योग सिद्धान्त एवं अध्यात्म का प्रतिपादक मासिक

सिद्ध योग

संस्थापक-
योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई, एत्मादपुर (आगरा) उ.प्र.

वर्ष : 57 अंक-8
नवम्बर 2024

प्रकाशन तिथि : 01-11-2024
मूल्य-एक प्रति:25/- वार्षिक: 250/-
आजीवन- 10 वर्ष- 1500/-

अमृतकण

गुकारं च गुणतीतं रूकारं रूपवर्जितम्
गुणातीतमरूपंच योहिस्यात्सगुरू: स्मृत:

गुकार गुणों से अतीत है, रूकार रूप से रहित है, जो गुणों से अतीत और रूप रहित है वह गुरू कहलाता है।

श्रुति स्मृतिमविज्ञाय केवलं गुरूसेवका:
ते वै संन्यासिन: प्रोक्ता इतरेवेषधारिण:

श्रुति स्मृति को न जानकर भी जो केवल गुरू के सेवक हैं वे ही संन्यासी कहलाते हैं अन्य केवल संन्यासी के वेषधारी हैं यदि गुरू की सेवा नहीं करते हैं।

गुरो: कृपाप्रसादेन स्वात्मारामो हि लभ्यते
अनेन गुरूमार्गेण ह्यन्तर्ज्ञानं प्रवर्तते

गुरूदेव की कृपा के प्रसाद से अपनी आत्मा आनन्द स्वरूप को प्राप्त होती है। इस मार्ग से अन्तर्ज्ञान उदय होता है।

आब्रह्मस्तंबपर्यन्तं परमात्मस्वरूपिणम्
स्थावरं जङ्गमं चैव प्रणमामि जगन्मयम्

ब्रह्मा से छोटे पौधे पर्यन्त परमात्मा के स्वरूप हैं। जगन्मय स्थावर और जंगम परमात्मा को प्रणाम करता हूँ ।

वंदेऽहं सच्चिदानन्दं भेदातीतं जगद्गुरूम्
नित्यं पूर्णं निराकारं निर्गुणं स्वात्मसंस्थितम्

सच्चिदानन्द स्वरूप, भेद से अतीत, नित्य पूर्ण आकर रहित, गुण रहित स्वात्मा में स्थित जगद्गुरू की मैं वन्दना करता हूँ।

ॐ ॐ ॐ

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुखा विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः ।
तत्प्रायप्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणानाम् भवतु महतां सिद्धेय सिद्धयोगः ॥

अर्थः- शुद्ध (निर्विकार) स्वभाव वाले परम ब्रह्म का ध्यान करते-करते मृत्यु के मुख में पड़ा हुआ मनुष्य शीघ्र ही मुक्ति को प्राप्त हो जाता है। उस मुक्ति की प्राप्ति के उपाय स्वरूप योग ध्यान शास्त्र के सिद्धान्तों की विस्तृत व्याख्या करने वाली "सिद्धयोग" मासिक पत्रिका सतपुरुषों के परम कल्याण की सिद्धि (प्राप्ति) में सहाय व सहायक हो ।

वर्ष : 57 नवम्बर 2024 अंक : 08

अभ्यासयोगेन बिना न क्षीयते

जन्मान्तरशताभ्यास्ता मिथ्या संसारवासना ।
सा चिराभ्यासयोगेन बिना न क्षीयते क्वचित् ॥
तस्मात्सौम्य प्रत्येन पौरुषेणा विवेकिना ।
भोगेच्छां दूरतस्यक्त्वा त्रयमेव समाश्रय ॥

अर्थात्- सैकड़ों जन्मों से झूठी संसारी ममता का अभ्यास हो रहा है इसलिए बिना बहुत काल योगाभ्यास किये वह कभी नष्ट नहीं हो सकती है। हे सौम्य ! इस हेतु से यत्न पुरुषार्थ (सामर्थ्य) और विचार इन तीनों ही के आश्रय होकर योगबल से वासनाओं को दूर ही से त्याग दो।

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सवांई (एत्मादपुर) आगरा

SIDDHYOG

HINDI MONTHLY

Propagating Yoga & Spirtual values

संस्थापकः

योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादकः

आचार्य (डा0) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादकः

डा0 विजय सिंह एवं दिनेश शर्मा

लेख की सूची

वैराग्य (प्रथम) (योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज)	3
चित्त वृत्तियों एवं योग (आचार्य डा. दासलाल जी महाराज)	9
योग का सार्वभौमिक स्वरूप (डा. विजय सिंह)	12
लीलाधारी की लीलाऐं (श्री जगदीश राय "अधम")	15
भक्त से भगवत प्राप्ति (श्री कृष्ण कुमार पाण्डेय)	20
भरोसा (श्री अन्तूराम यादव)	23
गुरूदेव का 115 वाँ प्राकट्योत्सव सम्पन्न	27
महिर्ष दयानंद और योग (श्री देवीप्रसाद शर्मा "दिव्य")	29
जीवन की पूर्णिमा (डा. गुन्शीराम शर्मा)	31

होते हैं। यह सामान्य ज्ञान है, परन्तु इस ज्ञान में एक वस्तु अपनी अन्य समानधर्मा वस्तुओं की प्रतिनिधि बनकर उन वस्तुओं का एक सामान्य ज्ञान कराती है। अतः इस ज्ञान में एक आश्रय रहता है। चौथे प्रकार के ज्ञान में यह आश्रय भी नहीं रहता। वहाँ कोई वस्तु प्रतिनिधि बनकर नहीं आती। जब मैं कहता है कि दो और दो मिलाकर चार होते हैं तो यह ज्ञान सर्वोच्च कोटि का है। क्योंकि इसमें किसी वस्तु के आश्रयण की आवश्यकता नहीं है। इस ज्ञान को साक्षात् ज्ञान भी कहते हैं। कठोपनिषद् के ऋषि ने प्लेटो से बहुत पहले ज्ञान के सम्बन्ध में कुछ-कुछ ऐसी ही बात लिखी थी। इसके अनुसार कुछ मानव, दर्पण में पड़े हुए, प्रतिबिम्ब की भाँति अपनी ही परछाई अन्यों में देखा करते हैं। कुछ मानव ऐसे हैं, जो जागरण की अवस्था में भी स्वप्न देखा करते हैं, आदर्शों के पीछे भागते हैं। कुछ मानव जल की भांति अपने अन्दर पड़े हुए प्रतिबिम्ब रूपी प्रभावों और संस्कारों को सुन्दर रूप प्रदान करते हैं और कुछ मानव ऐसे हैं जो छाया और आतप की भांति वस्तुओं का स्पष्ट प्रत्यक्ष किया करते हैं। पहली कोटि के मानव मनुष्य-लोक के निवासी हैं, मानवता के अत्यन्त सामान्य स्तर से सम्बन्ध रखते हैं। द्वितीय प्रकार के मानव पितृलोक के निवासी हैं। ये एक आदर्श के पीछे चलने वाले हैं और उसकी प्राप्ति में यदि आवश्यकता पड़े, तो अपने जीवन की बलि भी चढ़ा देते हैं। तृतीय कोटि के मानव गन्धर्व लोक के वासी हैं, स्वर की साधना करने वाले और वाणी पर आधि- पत्य रखने वाले हैं। इनमें संगीतज्ञ तथा कवियों की गणना होती है। चतुर्थ कोटि ब्रह्म लोक के निवा-सियों अर्थात् ज्ञान के क्षेत्र में विचरण करने वाले दार्शनिकों की है, जो निदिध्यासन के समय ज्ञान की साक्षात् उपलब्धि करते हैं।

ज्ञान को हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष दे प्रकाश में आना है। इस प्रकाश के समय समस्त अज्ञान जन्य हीन ग्रन्थियां नष्ट हो जाती हैं। मानव विशुद्ध बुद्धि के प्रकाश सत् को सत् और असत् को असत् रूप में अनुभव करता है या प्रत्यक्ष देखता है। जो मानव प्रयत्न करता हुआ इस अवस्था को प्राप्त हो गया, वह धन्य है। उसके जीवन की पूर्णिमा

उसके अन्दर तो खिल ही उठती है, अपने चतुर्दिक भी ज्ञान-लोक की विकीर्ण करने लगती हैं।

यजुर्वेद के ३२वें अध्याय में इस अवस्था वर्णन निम्नलिखित मन्त्रों द्वारा किया गया है-

परीत्य भूतानि परीत्य लोकान्,
परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च।
उपस्थाय प्रथमजामृतस्य
आत्माना आत्मानमभि संविवेश।
परिद्यावापृथिवी सद्य इत्वा परि,
लोकान् परि दिशः परिस्वः।
ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य,
तदपश्यत् तदभवत् तदासीत्।

जीव जब भिन्न-भिन्न योनियों में घूमता हुआ भिन्न-भिन्न लोकों, दिशाओं एवं प्रदिशाओं को देखता हुआ, ऋत की प्रथमजा तक पहुँचता है, तभी वह इसका आश्रय लेकर आत्म-ज्ञान प्राप्त करता है और आत्म ज्ञान द्वारा ही परमात्मा में प्रवेश करता है।

द्यावा-पृथिवी, समस्त भुवन, दिशा और स्वर्गलोक को सब ओर समझकर वह शीघ्र ही ऋत के फैले हुए तन्तु को चीर डालता है। पश्चात् वह प्रभु के दर्शन करता है। इन मंत्रों में ऋत की प्रथमजा तक पहुंचना आवश्यक माना गया है। इसके बिना जीवात्मा को अपने अस्तित्व का साक्षात् ज्ञान नहीं हो पाता। इसके पूर्व तो वह नाना लोकों और योनियों में आवागमन के क्लेश-जाल को भोगता हुआ, अपने को प्रकृति के साथ एक समझा करता है। जगत और कर्म तन्तु सबके सब त तत्त्व का ही फैलाव है। आत्मा का अपना स्वरूप तो चिति का है, चैतन्य का है। ऋत की प्रथमजा का आश्रय लेकर ही जीवात्मा को इसका ज्ञान होता है। ऋत की प्रथमजा क्या है? ब्रह्माण्ड में वह व्या घीतत्त्व है और पिण्ड में इसी को भी कहते धी के पर्यायवाची शब्द तो अनेक हैं, पर सब एक ही अवस्था का द्योतन नहीं करते। बुद्धि, मेधा, प्रज्ञा तीनों हमें तीन स्तरों ज्ञान कराते हैं। बुद्धि श्रवण से सम्बन्ध रखती है, मेधा मनन से और प्रज्ञा निदिध्यासन सामान्य रूप से जो कुछ ज्ञान हमें इति द्वारा प्राप्त होता है (सुनने, देखने, चखने, सूंघने, छूने आदि द्वारा), वह मन की को में एकत्र हो जाता है। जब हम एक सामिग्री पर स्वयं चिन्तन करते हैं, मनन क हैं, तो वह पचकर, आत्मसात् होकर

अर्थात् रूपरस गंध स्त्री अन्न पान आदि दृष्ट विषय और स्वर्ग वैदेह्य प्रकृतिलयादि अदृष्ट विषय चाहे कितने ही दिव्यादिव्य विषय हों प्रसंख्यान बल से विषय चाहे दोषदर्शी चित्त ह्येवापादेश शून्याअना भोगोत्मिका स्थित ही वशीकार संज्ञा वैराग्य वाली हुआ करती है। इस बात को यों समझ लेना चाहिये। विषय दो प्रकार के होते है:-

१. दृष्ट विषय

२. आनुश्रविक विषय

दृष्ट विषय है वे हैं जो इस लोक में रूप, रस गन्ध, शब्द, स्पर्श स्त्री, अन्नपान, ऐश्वर्य इत्यादि इन विषयों को मनुष्य सामान्य रूप से प्राप्त करता ही है।

अर्थात् मनुष्य लोक में जन्म लेने वाले हर प्राणी के लिये अपने-अपने पुण्य कर्म विपाक के अनुसार साधारण रूप से यह सभी को उपलब्ध होते है। इसके अतिरिक्त आनुश्रविक विषय हैं जिनको हम शास्त्रों से जानते और सुनते हैं इनमें भी दो प्रकार हैं:-

एक वह है जिसको हम शरीरान्तर वेद्य कह सकते है,अर्थात जब हमारा कोई शरीर देवलोकादि में बनेगा तभी उन विषयों का ज्ञान हमें हो सकेगा। जैसे जो स्वर्ग आदि प्राप्त करते हैं या विदेह और प्रकृतिनील योगियों को प्राप्त होते है। इन विषयों को शरीरान्त वेद्य कहा है और इसके अतिरिक्त दिव्य गन्ध, दिव्य रस, दिव्य रूप, दिव्य स्पर्श एवं दिव्य शब्दों का अनुभव होना ये रूप विषय अवस्थान्तर वेद्य कहलाते हैं। इसी प्रकार का योग दर्शन के विभूतिपाद में कही हुई सभी सिद्धियाँ, जैसे 'बलेषु हस्ति बलादीनि'- आदि सब विषय अवस्थान्तर वेद्य हैं।

इन दोनों प्रकार के दिव्य-अदिव्य विषयों की उपस्थिति में जब चित्त ज्ञान के बल से इनमें दोष देखता है, दोष देख करके इनको ग्रहण नहीं करता और न परे हटाने का ही प्रयत्न करता है। क्योंकि उस योगी के चित्त में इसके प्रति न राग है और न द्वेष है। राग हो तो ग्रहण करने की कोशिश करें औ द्वेष हो तो इसे परे हटाने की कोशिश करें। ऐसी स्थिति में जो हेयोपदेश शून्या स्थिति है उसी को वशीकार संज्ञा वैराग्य कहते हैं। वस्तुतः-

विकारहेतौ सति विक्रियन्ते येषां न चेतांसि त एव धीराः।

अर्थात् जिनके चित्त विकार के हेतु स्त्री, अन्न-पान आदि के उपस्थित होने पर भी विकृत नहीं होते वही पुरुष धीर है। इस प्रकार उनका चित्त एकरस बना रहता है। चित्त की इसी प्रकार की स्थिति ही वशीकार संज्ञा कहलाती है। हमारे शास्त्रों में इस वशीकार वैराग्य को अपर वैराग्य माना है। पर वैराग्य इससे भी ऊँचा है। जिसका वर्णन आगे के निबन्ध में किया जायेगा। विषयों में राग का होना ही वैराग्य का कारण नहीं है। क्योंकि कभी-कभी ऐसा भी देखने में आता है कि जो लोग तीव्र रोग आदि से पीड़ित हो जाते हैं उनका भी विषयों में राग नहीं रहता और विषयों से अरुचि हो जाती है। इसका नाम वैराग्य नहीं है और न ऐसे वैराग्य से योग सिद्ध होता है। कदाचित् किसी व्यक्ति को विषय उपलब्ध ही न हो और वह कह दे नहीं जी हम तो विरक्त हैं तो उनकी विरक्तता कोई महत्त्व नहीं रखती, क्योंकि उनको वह वस्तु उपलब्ध ही नहीं या वस्तु उपलब्ध होने पर जिनकी इन्द्रिय शक्ति क्षीण हो चुकी है, ऐसी स्थिति में कोई कहे कि हम विरक्त हैं तो यह भी उनका कहना गलत है क्योंकि

उनके अन्दर विषय-भोग की सामर्थ्य नहीं है तो वे लोग क्या भोग भोगेंगे। वस्तुतः तो देखे और सुने हुये विषयों में राग का प्रसंख्यान बल से उत्पन्न ही न होना वशीकार संज्ञा वैराग्य है। हमारे शास्त्रकारों ने इस उपर वैराग्य को अलग-अलग चार विभागों में बाँट दिया है। जैसे-

1. यतमान संज्ञा वैराग्य।
2. व्यतिरेक संज्ञा वैराग्य।
3. एकेन्द्रिय संज्ञा वैराग्य।
4. वशीकार संज्ञा वैराग्य।

इन चारों को इस प्रकार समझ लेना चाहिये। जैसे-

1. इन्द्रियों के विषय अपने अपने रागों में मनुष्य को प्रवृत्त करते हैं। ज्यों ही वासनिक भोग सामने उप स्थित हुए योगी उससे बचने की चेष्टा करता है। अपने चित्त पर नियंत्रण करता है। इसका नाम यतमान संज्ञा वैराग्य है।

2. ऐसा प्रयत्न करने पर जब योगी यह देखता है कि मैंने अमुक-अमुक विषयों पर अधिकार प्राप्त कर लिया है और इन-इन विषयों को प्राप्त करना शेष है ऐसे वैराग्य को व्यतिरेक संज्ञा वैराग्य कहते हैं।

3. कदाचित अभ्यास-बल से या अन्तरानुभूति के बल से जब-जब राग-द्वेष आदि इन्द्रियों को बाह्य विषयों में प्रवृत्त करने में तो असमर्थ हो जाते है किन्तु मन में सूक्ष्म रूप से टिके रहते हैं। इस प्रकार की संज्ञा का जो योगी है किसी विषय अवसर पर दिव्य विषय ज्यों ही उसे प्राप्त होते हैं तो उसका उसका मन क्षुभित हो सका है। ऐसे वैराग्य को एकेन्द्रिय संज्ञा वैराग्य कहा गया है।

4. इससे भी उत्तम राग की सूक्ष्म रूप से निवृत्ति हो जाती है। और दिव्या-दिव्य विषय उपस्थित होने पर भी बराबर उपेक्षा वृत्ति बनी रहती है। यह वैराग्य की तीनों श्रेणियों से उत्कृष्ट है। पहली तीन अवस्थाओं का वैराग्य निरोध का कारण नहीं बनता। निरोध का कारण चतुर्थ भूमि वाला वशीकार संज्ञक वैराग्य ही है। इसलिये इस वैराग्य का निरोध के साधनों में वर्णन किया गया है। किन्तु यह अवस्था योगी को वैराग्य सिद्ध-स्थिति में आता है ज्यों-ज्यों मनुष्य पर वैराग्य की ओर अपना कदम बढ़ाता चला जाता है। पर वैराग्य में ही मनुष्य की रस प्रवृत्ति पूर्णरूपेण हट पाती है।

भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के दूसरे अध्याय में कहा है।

विषया विनिवर्तन्ते
निराहरस्य देहिनः।
रस वर्जंरसोऽप्यस्य
परं दृष्ट्वा निवर्तते।। श्लोक 2:59

अर्थात् निराहार व्यक्ति जब अपने रसादि विषयों से दूर रहता है तो एसकी वासनायें मन से हट जाती हैं। किन्तु रस की भावना नष्ट नहीं होती। उसकी रस की भावना पर-दर्शन के बाद ही हट पाती है। जब मनुष्य को पर-दर्शन होता है तो उसकी चित्त वृत्तियाँ निरुद्ध हो जाती है। एक प्रकार से वह अपनी स्वरूप-स्थिति को प्राप्त कर लेता है। और अपने स्वरूप का दृष्टा बन जाता है। निरोध स्थिति ही योगी की स्वरूप स्थिति है जिसके लिये योग-दर्शन मुँह खोलकर कहता है।

:''तढ़ा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्।।''

अर्थात्

तदा तस्मिन् स्थितै द्रष्टुः जीवात्मनः स्वरूपेऽवस्थानम् तदानीम् स्वरूप प्रतिष्ठा तावत कीदृशी यथा चित्तिशक्तिर्भवति कैवल्ये।

अर्थात् जैसे चेतन शक्ति केवली भाव को प्राप्त होने पर हुआ करती है उस समय आत्मा बुद्धि बोध को छोड़कर के अपने स्वरूप में ठहर जाती है इसी को स्वरूप प्रतिष्ठा कहा गया है। एवं इसी को ही पंतजलिदेव ने पर वैराग्य के रूप में वर्णित किया है यथा:-

'तत्परं पुरुषख्योतेगुणवैतृष्णयम्।'

इस सूत्र पर भाष्य करते हुए भगवान व्यासदेव जी महाराज इस प्रकार पंक्तियाँ लिखते है:-

दृष्टानुश्रविक विषय दोषदर्शी विरक्त: पुरुष दर्शनाभ्यासाच्चित्तशुद्धि प्रविवेकाप्यायित बुद्धि-र्गुणे-भ्यो व्यक्तसव्यक्त धर्मकेभ्यो विरक्त इति तद्द्वयं वैराग्यं तत्र. यदुत्तर तद्ज्ञान प्रसादो मात्रं यस्योदये सत्तियोगी प्रत्युदित ख्यातिरेव मन्यते प्राप्तं प्रापणीयं क्षीणा क्षेतव्या: क्लेशा' छिन्न: श्लिष्टपर्वा भवसंक्रमो यस्याविच्छेदात् जनित्वा क्रियते मृत्वा च जायत इति ज्ञानस्यैव पराकाष्ठा वैराग्यम् एतस्यैव हि बान्तरीयंक कैवल्यमिति॥

बुद्धि-बोध आत्मा पुरुष ज्यों-ज्यों प्रसंख्यान की ओर चलता है त्यों-त्यों उसका बुद्धि-विवेक और निर्मल होता चला जाता है और धीरे-धीरे पुरुष-दर्शन के अभ्यास से अपने स्वरूप में अवस्थित होकर वह जिज्ञासु व्यक्ताव्यक्त कर्म वाले गुणों से भी विरक्त हो जाया करता है। इस प्रकार से वैराग्य दो प्रकार का माना गया है। अपर वैराग्य का वर्णन पहले कर दिया गया है। जिसमें मनुष्य दृष्टानुश्रविक विषयों में दोषी बन जाता है उस वैराग्य का नाम वशीकार संज्ञा है। किन्तु ज्यों-त्यों साधक अपने अभ्यास को उत्तरोत्तर बढ़ाता चला जाता है और उसकी विवेक-ख्याति प्लवन होकर निर्मल होती चली जाती है तो उसका मन व्यक्ताव्यक्त गुणों से विरक्त हो जाया करता है उसी वैराग्य को पर वैराग्य कहा गया है। वह वैराग्य पुरुष ख्याति मात्र है और सर्वोत्कृष्ठ है। इस वैराग्य के पैदा हो जाने पर प्रत्युत्ख्याति योगी इस प्रकार मानता है- 'प्राप्तं प्राप्तियमं' जो कुछ मुझे पाना था पा लिया। क्षीणा: क्षीतव्या: क्लेशा: नष्ट करने लायक क्लेश मैंने नष्ट कर दिये हैं क्षित: क्लिष्ट भव सक्रम: श्रृङ्खला से जुड़ा हुआ भाव संसार चक्र मैंने नष्ट कर दिया है जिसके नष्ट होने पर बार-बार जन्मना और मरना पड़ता था। इसी वैराग्य को मोक्ष का नाम तरीयक माना गया है।

अर्थात् यह वैराग्य मोक्ष ही है इस स्थिति के अन्दर को प्राप्त हुआ योगी केवल मात्र बुद्धि बोध की अस्मि वृत्ति सही अवशेष रहता है। ऐसे योगी की वृत्ति से ही अवशेष रहता है। ऐसे योगी की वृत्ति निर्माणोमुखी रहती है। इसी को ऋतम्भरा प्रज्ञा करते हैं।

''ऋतं सत्यं विभर्त्ति या सा ऋतम्भरा:।'

यह वृत्ति सत्य को धारण करती है। योगी अपने पूर्ण तेज के साथ अस्ति अस्ति अहमेवा अस्मि। यह सब कुछ मैं ही हूं ऐसा अनुभव करता है।

यही पर वैराग्य का अन्तिम परिणाम है। योगाभ्यास करने वाले साधक को ज्यों-ज्यों अन्तर्मुखता प्राप्त होती है त्यों-त्यों वह वशीकार संज्ञा वैराग्य को प्राप्त होता चला जाता है। और ज्यों-ज्यों विवेक ख्याति की ओर आगे बढ़ता है। त्यों-त्यों वह पर वैराग्य को प्राप्त हो जाता है और अपने स्वरूप में स्थित हो जाती है इसी का नाम कैवल्य है। पुरूष का बुद्धि बोध को छोड़कर अपने स्वरूप में स्थित होना ही केवली भाव है। इसलिये योग के जिज्ञासु साधक को चाहिये कि वह अष्टांग योग के नियमों का पालन करता हुआ आपको पूर्ण विवेकवान् बना दे जिससे परम शान्ति लाभ हो।

"सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भागभवेत्।।

चित्त वृत्तियाँ एवं योग

आचार्य डा. बासलाल जी महाराज

मन, बुद्धि, चित्त,अहंकार को मिलाकर चित्त कहते है। योग साधन में चित्त वृत्तियों को समझना परमावश्यक होता है मन, बुद्धि आदि के कार्य वैसे तो अलग-अलग है। मन को संकल्प विकल्पात्मक कहा है। इसमें संकल्प और विकल्प आते रहते हैं बुद्धि का लक्षण है "निश्चात्मिका बुद्धिः जो किसी बात की अन्तिम रूप में निर्णय देती है उसे बुद्धि कहते है। जब ये चारों समवेत होकर किसी वस्तु का एकाग्र होकर चिन्तन करते हैं तब इसे चित्त कहा गया है। जिसमें चिन्तन होता है चिन्तन की शक्ति के कारण ही चेतना शब्द आया है। "भूतानामस्मि चेतना" गीता में विभूति योग के अन्तर्गत भगवान् कहते हैं मैं प्राणियों में चेतना के रूप में हूँ।

चित्त धर्मी कहा गया है और इसकी वृत्तियाँ धर्म कहे गये हैं। चित्त की समस्त वृत्तियों को पतञ्जलिदेव जी ने पाँच भागों में बांटा है- जो, प्रमाण, विपर्यय, विकल्प, निद्रा और स्मृति के रूप में होते है ये पुनः दो भागों में बट जाते हैं- जो क्लिष्ट और अक्लिष्ट भेद से कहे गये हैं। जितनी भी मानव बुद्धि में विचार आ सकते हैं वे इन्हीं पाँच श्रेणियों में किसी न किसी श्रेणी में आते है। इनमें प्रमाण विर्पयय और विकल्प जाग्रत की अवस्था है और स्मृति पूर्व के निर्मित होती है क्लिष्ट वृत्ति दुःख देने वाले होने के कारण क्लिष्ट कहे जाते हैं। और जो सुख देने वाली वृत्ति होती है उसे ही अक्लिष्ट कहते है। अब हम इन वृत्तियों पर विस्तार से चर्चा करेंगे। चित्त वृत्तियाँ चित्त रूपी महासागर से निकलते है।

व्यास भाष्य में लिखा हैं- चित्त की वृत्तियों के निरोध के उपाय में अभ्यास और वैराग्य का निरोध का उपाय बताया है। अभ्यास वैराग्याभ्यान् तन्निरोध कर व्याख्या करते हुये व्यासदेव जी कहते हैः-

"चित्त नदी नामोभय तो वाहिनी वहति कल्याणाय वहति पापाय च। या तु कैवल्य प्राग्भारा विवेक विषय निम्ना से कल्याण वहा संसार प्राग्भाराऽविवेक विषय निम्ना पाप वहा। तत्र वैराग्येण विवेक स्त्रोतः उदघाट्यते ? चित्त रूपी नदी दो धाराओं में बहने वाली नदी के समान है। एक धारा रूप वृत्ति कल्याण के लिए बहती है। और दूसरी पाप के लिये। इन दोनों में जो मोक्ष मार्ग में जाने वाली है वह विवेकख्याति की ओर जाने वाली कल्याण वहा है। इन दोनों में जो पाप की ओर बहने वाली है उसे वैराग्य की द्वारा सांसारिक विषयों की ओर जाने वाली प्रवाह के बन्द कर दिया जाता है और विवेक ज्ञान के बार -बार अभ्यास से मोक्ष मार्ग के प्रवाह को खोला जाता है। चित्त धर्मी है और वृत्तियाँ धर्म हैं। सुख दुःख और मोह रूपी वृत्तियाँ संस्कार के अनुसार होती है और वृत्ति से कर्म बनने लगता है क्लिष्ट और अक्लिष्ट वृत्तियों एक दूसरे से सम्बंद्ध भी होती है क्लिष्ट के अन्दर अक्लिष्ट और अक्लिष्ट के अन्दर क्लिष्ट रहा करते है। योग शास्त्र में भी कर्म के तीन प्रकार बताये जो पाप के पुण्य के तथा मिश्रित कहे हैं। 'कर्माशुक्लाकृष्ण योगि नामित त्रिविधमितरेषाम्' अर्थात योगीयों के न पाप के कर्म होते हैं न पुण्य के

किन्तु अज्ञानियों के पाप पुण्यं मिश्रित होते हैं। गीता में भी भगवान् ने इष्ट, अनिष्ट और मिश्र कर्म का संकेत किया है। किन्तु योगियों का कोई कर्म नहीं बनता है। जो ध्यान योग में प्रवीण हो जाते हैं। निर्विचार वैशारद्य को प्राप्त करते हैं उनका कर्म बीज नष्ट हो जाता है।

कोई भी व्यक्ति पूर्णतया पापी या पूर्ण पुण्यात्मा नहीं होता। बड़े बड़े योगियों के भी पूर्व संस्कार ध्यान योग में व्यवधान भी डालते रहते हैं जब तक निर्बीज समाधि की पूर्ण स्थिति नहीं हो जाती। कर्मों के फल को अवश्य भोगना पड़ता है किन्तु योग ध्यानियों के पास एक कला ध्यान की होती है जिसके बल से वे कर्मफल का तन्वीकरण कर लेते हैं सूक्ष्म में भोग लेते हैं या समाधि में संस्कारों को त्वरित भोग कर सूक्ष्म में ही समाप्त कर देते हैं। योगी लोग अनेक पूर्व जन्मों के संस्कार को देखकर उन्हें इसी जन्म में समाधिमें ही भोग लेते हैं जब कर्मों की पूर्ण शुद्धि हो जाता है। तभी योगी कैवल्य या मुक्ति का अधिकारी बनता है। समाधि की अग्नि से ही ज्ञानाग्नि होती है उसी से सारे कर्म बीज नष्ट हो जाते हैं।

किसी बीज को भून दिया जाये या उबाल दिया जाये तो उससे फसल नहीं उगता है इसी प्रकार से कर्मबीज की दशा कहीं गयी है।

वृत्तियों को ही सामान्य भाषा में विचार कहते हैं इसमें जो दृढ़ विचार होते है वही स्थायी होते हैं उन्ही के आधार पर व्यक्ति कर्म में प्रवत्त होता है जैसा गुण उस समय प्रधान बनकर सामने आया है उसी गुण के अनुसार व्यक्ति कर्म करता है।

योग दर्शन वस्तुतः एक मनोविज्ञान का दर्शनग्रन्थ है। चित्त या मन की वृत्तियों का जितना सूक्ष्म दर्शन इस दर्शन में मिलता है अन्यत्र दुलर्भ है। पाश्चात्य मनोविज्ञानियों ने भी बड़े-बड़े ग्रन्थ लिखे हैं। जिनमें फ्राइड एवं कार्लजुग उल्लेखनीय है इन विद्वानों ने वृत्तियों या विचारों का विश्लेषण तो अवश्य किया है। किन्तु इनके शोधन करके आत्मज्ञान के लिये उपयोगी बनाने का उपाय नहीं बताया हैं योग के द्वारा साधक इन वृत्तियों का शोधन करता है संस्कार या परिष्कार करता है। तप, स्वाध्याय और ईश्वर प्रतिधान क्लेशजय वृत्तियों के शोधन के उपाय के रूप में वर्णित हैं इन्हें ही क्रियायोग का नाम दिया है। शोधन करते-करते विवेक ख्याति तक योगी पहुँचे जाता है और विवेक ख्याति से ही बुद्धि निर्मल होती है। अथवा ये दोनों पर्याय के रूप में व्यवहार में आते हैं।

कैवल्य की परिभाषा करते हुए महर्षि पतञ्जलि देव कहते है:-

सत्व पुरुषयो: शुद्धि साम्य कैवल्यन् योग दर्शन 3/55

अर्थात् बुद्धि और पुरुष दोनों की समान रूप से शुद्धि हो जाने पर कैवल्य लाभ होता है। बुद्धि की पूर्ण शुद्धि समाधि जन्य ज्ञानाग्नि से ही होती है। इसके शुद्ध हो जाने पर पुरुष या आत्मा बुद्धि बोधात्मा न होकर या दर्शित विषय न होकर अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। तभी तो कहा 'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थापनम्' तब द्रष्टा अपने स्वरूप में अवस्थित हो जाता है। उसी प्रकार जैसे कैवल्य की स्थिति में होता है। इस प्रकार के चित्त की एकाग्र करके अर्थात् शोधन करके आत्मज्ञान की ओर ले लाया जाता है। योग में मन को एकाग्र करने के

प्राणयाम, ईश्वर प्राणिधान वीतरागी जीवन युक्त पुरूषों का ध्यान, विशोका ज्योति मिति का ध्यान तन्मात्राओं का ध्यान आदि उपाय है जिस पर चित्त को एकाग्र करके इसे समाहित किया जाता है। ये सब आधार या अधिष्ठान जिसको आधार बनाकर चित्त एकाग्र कर सकते है और धारण व ध्यान के विधि से सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि की प्राप्ति की जा सकती है तभी योगी जीवन मुक्त होकर स्वछन्द विचरता है योगी अन्त में ब्राह्मी स्थिति को पाकर ब्रह्म निर्वाण को पा जाता है।

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

योग का सार्वभौमिक स्वरूप

डा0 विजय सिंह

योग आगम-निगम सम्मत सार्वभौमिक विद्या है। मानव मात्र इस विद्या का अधिकारी है। शर्त है, पात्रता। पात्रता का अभिप्राय है, कार्य करने की क्षमता। योग अधिभूत, अधिदैव तथा अध्यातम तीनों तलों पर साधन से साध्य की ओर अग्रसर होता हुआ, पराकाष्टा पर समाधि का द्योतक है। समाधि, समतावस्था जीवात्मनः परमात्मनः। इस प्रकार हम योग द्वारा शिवत्व को प्राप्त होते हैं।

सांसारिक विद्याओं की तरह, योग भी गुरु प्रदत्त विद्या है। गुरु कैसा? जो दीयते ज्ञान छीयते प्रकाशः वर्णन् के सामर्थ्य वाला हो। जिसमें चक्षुर उन्मीलन करने का सामर्थ्य हो। स्वंय योगेश्वर श्रीकृष्ण ने अर्जुन से कहा है-

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम।
विवस्वान्मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽ ब्रवीत्।। गीता अ0 4
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो विदुः।
स कालेनेह महता योगो नष्टः परन्तपा।गीता अ0 4

समय जीतने से यह योग जन मानस से विस्मृत होता गया। इसे सबसे पहले सूर्य को, सूर्य ने विवस्वान को, उन्होने मनु महाराज को तथा इस परम्परा से आगे अनेक ऋषियों, राजर्षियों को योग-विद्या का ज्ञान प्राप्त हुआ।

कहने का तात्पर्य यह कि प्रज्ञावान सदगुरु ही अपने शक्ति सम्प्रेषण से यथार्थ जिज्ञासु को योग के मूल स्वरूप का बोध करा सकते हैं।

सन् 1964 में ऐसे ही सामर्थ्यवान सिद्ध सदगुरु योगीराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज, श्री सिद्ध गुफा, सवांई, आगरा वालों के चरण शरण में जाने से मुझेयोग के भौतिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक स्वरूप का सैद्धान्तिक, क्रियात्मक और अनभूतिपरक बोध मिला। उनके ही प्रेरणा से जीवन के इस उत्तरार्ध में जो थोड़ा समझ सका हूँ, उसे कलमबद्ध जन हिताय कर रहा हूँ।

हमारा शरीर एक जटिल संरचना है। जड़ और चेतनता का उत्कृष्ट रचना मनुष्य है। योग की भाषा में हम पंच-कोषों से निर्मित हैं। हमारे तीनों शरीर,स्थूल, सूक्ष्म और कारण पंच कोषों से निर्मित है। पंचकोष, अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय और आनन्दमय कोषों के रूप में बताये गये हैं। हमारा स्थूल शरीर का निर्माण व पोषण अन्नमय और प्राणयम कोषों द्वारा निरन्तर भावत्, जीवन होता रहता है। शरीर में स्नायु, तंत्रिकायें, नाड़ी संजाक रस, रक्त, ओज, विर्य, मल, मूत्र, स्वेद नाना प्रवाधि कार्य प्राण द्वारा साध्य होते है।

हमारा सूक्ष्म शरीर , सूक्ष्म प्राण, मन, बुद्धि, चित्त और अंहकार द्वारा रचित है। जाग्रत और स्वपन में व्यवहृत शरीर सूक्ष्म और स्थूल से क्रियाशील है। स्वप्न का भी जाग्रत जैसा अद्भुत संसार है तम, रज और सतो गुणों के प्रभाव से ही मनोविकार से लेकर योगनिद्रा सूक्ष्म शरीर का ही व्यापार है। कारण शरीर विशुद्ध आत्मतत्व जो सत् चित् आनन्द स्वरूप है।

अतः योग की यात्रा स्थूल काया (अधिभूत) से सूक्ष्म (अधिदैविक) और आगे कारण (अधि-आत्म) से गमन करता हुआ ज्ञान-विज्ञान में प्रतिष्ठित कराने वाली अव्यय विद्या है।

वर्तमान में योग शरीर को स्वस्थ रखने वाली क्रिया समुच्चय के रूप में अपनाया गया है। श्री भगवान पंतजलि ने योग-दर्शन के साधना पाद में अष्ठांग का वर्णन किया है। यह क्रमानुसार यम, नियम,आसन प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान एवं समाधि है।

आत्मानुभव के लिए यम, नियम, आधार शिला है। दोनों के पाँच-पॉच भेद मानव को देवत्व प्रदान करने वाले है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शौच, संतोष स्वाध्यादि बताये गये है।

आज आसन और प्राणायाम ही क्रिया रूप में योग समझा जाता है। ठीक है, कुछ से कुछ करना श्रेयष्कर है।

वस्तुतः योग क्या है? समत्वं योग उच्चयते योगः कर्मशु कौशलम् अथवा योगश्चितवृत्ति निरोधः से योग परिभाषित किया गया है। अन्तर जगत् में प्रवेश होने पर उपरोक्त परिभाषायें एक ही हैं। वृत्तियों की चचंलता में समत्व ज्ञान नहीं सकता। कर्मकौशल भी बिना एकाग्रता के सम्भव नहीं है।

प्राण और मन का अन्योन्यश्रित संम्बन्ध है। जहाँ प्राण लय करता है वहॉ मन की वृत्तियॉ अपने आप निरूद्ध हो जाती है। अतः चित्त वृत्तियों अपने आप निरूद्ध हो जाती है। अतः वित्त वृत्तियॉ का निरोग ही योग है। चंचल मन माया। स्थिर मन शिव है।

अपने विद्यार्थी जीवनकाल में, सदगुरू चरणों के अनुगत होकर श्री सिद्धगुफा पर निवास करते हुये। सदगुरू सानिध्य और उनकी कृपा से हठ योग की क्रियायें, नेती, धौती, नौली, वस्त्री आदि के साथ योगासनों के चौरासी प्रकार तथा शक्तिपात से अर्न्तजगत में सम्प्रज्ञात् समाधि जनित विभूतियॉ बराबर देखने को मिलती है।

स्वाध्याय का स्वरूप क्या है? योग और योगियो की अद्भुत गाथाओ से भारतीय वांङ्मय भरा पड़ा है। ज्ञान योग, भक्तियोग, सांख्य योग, हठयोग आदि।

विषय रूवयं में एक-एक ग्रंथों में समाहित हैं। अस्तु! हमें अपने लोक-परलोक दोंनों समुज्जवक बनाने हेतु योग का अनुसरण करना चाहिए। गीता में भगवान श्रीकृष्ण की आज्ञा हम सभी जनों के लिए है।

तस्मात्सर्वेषु कालेषु माम अनुस्मर युद्ध च।
मयि अर्पित मनोबुद्धिर्यॉ मेवैष्यस्य संशयम्। ।।।। अ.८.११ ।।

हर समय मेरा स्मरण करते हुये युद्ध कर। ऐसा करने से तुम मेरे में स्थिति वाला होगा, इसमें संशय मत कर।

मेरे आराध्य सदगुरु देव योगेश्वर श्रीकृष्ण के इसआदेशात्मक श्लोक द्वारा उद्‌बोधित करते हुए कहते रहे है।

तपस्वियोऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतो अधिकार:
कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन।। (अ.०6)

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

लीलाधारी की लीलाऐं

जगदीश राय "अधम"

गतांक आगे से-

हमारे सदगुरू देव भगवान त्रिकालदर्शी महा सिद्ध श्री चन्द्रमोहन जी महाराज अपनी दिव्य लेखनी अपने लाडले बच्चों को अवगत कराते रहे हैं कि- "स्वान्तः सुखाय" हिमालय की गौरव पूर्ण गोदी तथा शिद्ध शिरोमणी पद को परित्यक्त करके सामान्य शरीर धारीयों के मध्य विचरने की मेरे सदगुरू देव, अकारण दयालु प्रभु श्री रामलालजी महाराज के हृदय में लोक लालसा जैसी कोई महत्वांकाक्षा नहीं थी। अपितु सिद्धों के सम्राट श्री प्रभुजी लोक लोकान्तरों पर जब दिव्य दृष्टिगत किया तो देखा कि ईश्वरावतारों की लीला स्थल पर सर्वाधिक ऋषि-मुनियों की ये सन्तानें भोगवाद, और ईर्ष्या आदि रोगों से ग्रसित है। अतः परम करूणावर रूप बना कर भूतल पर पर्दावग किया।

धरा-धाम पधारकर नास्तिकता-निशाचारी का नाम करके योग मार्ग का प्रचार प्रसार जन-जन तक पहुँचाया। आनन्द कन्द श्री प्रभु जी की कृपा सदैव अपने संस्कारी बच्चों पर एवं परिचित-अपरिचित व्यक्तियों पर भी चमत्कारी ढ़ग से चलती रही। भगवान श्रीकृष्ण चन्द्र जी महाराज को सहस्य ही लीलाऐं की। अतः पाठकों से निःसंकोच कहना है कि जो इन कृपाओं का पवित्र हृदय से पाठ करेंगे वे नर-नारी, बालक-वृद्ध, दीक्षित-योगी ध्यानी, श्रद्धा युक्त योग प्रवृति को प्राप्त होंगे। श्री प्रभु जी की शीघ्र कृपा दृष्टि होगी और वे कल्याण को प्राप्त होगें।

कृपा लीलाएँ

पंडित जी प्रभु कृपा

सम्मत् १९८१ में एक दिन श्री मुलखराज जी अपनी वॉसवाला की दुकान पर ध्यान मग्न हो रहे थे। उसी समय दुकान के सामने दो वृद्ध ब्राह्मण वार्तालाप कर रहे थे।

पहला ब्राह्मण- "कहो भैय्या तुम ध्यान में नित्य बैठते- हो या नहीं?"

दुसरा ब्राह्मण- सताइस साल से नित्य प्रतिदिन गुरू महाराज के उपदेशानुसार बैठता हूँ किन्तु मूलाधार चक्रस्थान पर कभी-कभी रिद्धि-सिद्धि सहित गणपति महाराज जी अति छोटे से अणुमात्र दर्शन होते है।

पहला ब्राह्मण- आप धन्य हैं तो नियम निभाते आ रहे है। हमने तो कुछ वर्ष अभ्यास किया किन्तु दर्शन न होने के कारण अब केवल पूजन श्रवण एवं संत्संग करते हैं। यह बात कह कर वह चला गया। तो श्री मुलखराज जी ने इस "पंडित जी को बुलाकर पूछा-पंडित जी 27 वर्ष तक अभ्यास करने से भी आपको दर्शन नहीं हुए?" पंडित जी बोले महाराज! कई जन्मो तक अभ्यास करने से होते हैं दर्शन-भैय्या! हमारे सदगुरू जी की अनुकम्पा से तो शीघ्र दर्शन हो जाते हैं। हमारे अनाथ-नाथ की कृपा से 24 घण्टे दिव्य दर्शन का आनन्द-कभी दो भुज, कभी चार भुज, कभी ऋद्धि-सिद्धि सहित दर्शन हो रहे हैं।"

पंडित जी- महाराज हम पर भी कृपा कीजिए।

भैय्या-कल हमारे साथ हमारे प्रभु स्थान पर आ जाना। हमारे प्रभु अवश्य कृपा करेंगे।

श्री मुलखराज जी ने आन्दकन्द प्रभु जी को सारा वृतान्त सुनाया और प्रार्थना की महाराज इस बालक के मुख से आपने कहला दिया है, आपकी भक्ति सफल होगी।

श्री प्रभु जी-बेटा! उसे २७ वर्ष के अभ्यास का फल तुम्हारे पास ही होना था। दुसरे दिन उन्ही पं० जी ने आकर साष्टांग प्रणाम किया। तब भी प्रभु ने उससे कहा "आज रात्रि को ध्यान में बैठना, फिर जैसी अवस्था हो कल हमें यहाँ आकर सुनाना"। दुसरे दिन वही ब्रह्माम्ण श्री प्रभु जी दरबार में प्रवेश कर प्रसन्न चित्त खिल खिलाकर हँसने लगा।कुछ देर पश्चात् श्री प्रभु जी ने मर्यादा रूप वृतान्त पूछा तो पंडित जी ने हाथ जोड़कर निवेदन किया-"महाराज रात्रि को ध्यान में बैठते ही गणपति जी ने ऋद्धि-सिद्धि सहित अलौलिक दिव्य प्रकाश मय दर्शन हुए। गणपति जी ने मुझे गोदी में ले लिया। मैं आश्चर्य चकित होकर उनके मुख मण्डल सूंड पर हाथ फेरकर, मन ही मन सोचने लगा कहीं स्वपन्न तो नहीं देख रहा। तभी गणपति जी पे फरमाया-"परेशान होकर क्यों विचार कर रहे हो? हमारा यह दिव्य आलौलिक दर्शन उन प्रभु श्री सतगुरू देव जी की कृपा का ही परिणाम है।" इस प्रकार कुछ काल तक ध्यान मग्न रहने से उत्थान अवस्था हो गई है। प्रभुदेव! आपकी असीम कृपा का मैं किस प्रकार वर्णन करूँ? वृद्धावस्था में मेरी युग-युगान्तर की मनोकामना पूर्ण कर दास को कृतार्थ किया है। पं० जी नित्य आकर प्रभु चरणों में लिपट जाते है।

माला देवी का उद्धार

एक दिन भी मुलखराज जी ने श्री चरणों में प्रणाम किया तो देखा कि बाँई ओर ७० वर्ष के लगभग आयु की वृद्धा माला देवी का सूक्ष्म शरीर सहमा हुआ सा बैठा है। उन्होने प्रार्थना किया- "महाराज! इस सूक्ष्म शरीर में यह माला देवी किस कारण सहमी हुई है?" तब भवसागर के त्राता श्री प्रभु जी ने फरमाया-"पुत्र, हम इसको भजन ध्यान में बैठने के लिए नित्य कहा करते थे। यह उत्तर देती थी-महाराज! परिवार बहुत अधिक है, अत एंव अवकाश नहीं मिलता। तो आज मन से मिलकर इसका स्थूल

से संम्बन्ध नहीं समाप्त हो चुका है। नित्य दर्शन आने के कारण इसकी वृत्ति हमारे ओर रही। इसलिए यह हमारे पास आकर बैठ गयी है। इसने कोई यज्ञ, ज्ञान, तप, योग ध्यान तो किया नहीं अब इसे कहाँ भेजे?''तब श्री मुलखराज जी ने प्रार्थना की-नाथ! यह आपकी कृपा से आपके श्री चरणों में आ गई है तो इसे दिव्य लोक का दान प्रदान किया जायें।

यह सुनकर भक्त वत्सल प्रभु जी प्रसन्न होकर मुस्करा दिए और ऊपर आकाश की ओर देखा कि तत्क्षण आकाश मार्ग से चतुर्भुज दिव्य रूप आभूषणों से सुशोभित पुष्प विमान पर चढ़े दिव्य पुष्पों की वर्षा करते हुए श्री प्रभु जी की ओर आ रहे है। तब पतित पावन प्रभु ली ने माला देवी को आशीर्वाद दिया और कहाँ जा मरी बैठ जा इसमें!'' श्री आनन्दकन्द जी के प्रभु जी के कर कमलों का स्पर्श होते ही माला देवी का शरीर दिव्य और चतुर्भुज होकर बारम्बार प्रणाम करता हुआ दिव्य सिहांसन पर बैठ गया। तब माला देवी का चतुर्भुज शरीर और विमान वाले देव हाथ जोड़कर श्री प्रभु जी के चरण कमलों में प्रणाम कर जय जय कार करते हुए दिव्य धाम को चले गए।

कुण्डलिनी जागरण

एक दिन भी मुलखराज जी अपने घर पर ध्यान समाधि में बैठे हुए थे कि इनको मूलाधार चक्र के समीप एक लम्बा सर्प लपेटों को खोलता हुआ फन फैला सम्मुख खड़ा दिखाई दिया। ऐसा दृष्य पूर्व में कभी न होने के कारण इनकी ध्यान से उत्थान हो गई। इन्होनें सारा वृतान्त आनन्दकन्द श्री करूणावतार श्री सत गुरूदेव प्रभु श्री रामलाल जी महाराज को सुनाया। उन्होने फरमाया-पुत्र यहीं सर्पनी नाड़ी सुष्मना को साढ़े तीन लपेटे देकर अपनी पूंछ को अपने मुँह में देकर सो रही है। इसी प्रकार भस्त्रिका प्राणों में प्राणायम द्वारा जाग्रत कुण्डलिनी होने पर योगी प्राणों की सुषम्ना में प्रवेश कर षट् चक्रों को में धन करता हुआ समाधिस्थ हो जाता है। बेटा! सतगुरू व्यापक रूप होते हैं। अतएव उनकी इच्छा हो तो वे खेंचरी के बिना भी प्राणों को सुषम्ना में प्रवेश कर ब्रहम्रन्ध समाधि में समाधिस्थ कर देते है।

तीसरे नेत्र की प्राप्ति

एक दिन बाग झण्डा सिंह-अमृतसर के समीप श्री मुलखराज जी भक्त समाज को ध्यान, भजन सत्यंग आदि से कृतार्थ कर रहे थे तो ''मोहिनी सूरत, स्वामी दिल में समा रही है'' यह भजन उच्चारण करते हुए तन की सुध भूल श्री प्रभू जी की गोद में सिर रख कर पढ़े रहे। जब संत्संग समाप्त हुआ तो पतित पुनीत श्री प्रभुजी ने इनको अपने सामने बिठला लिया और आज्ञा दी-''पुत्र तुम्हारे मस्तिष्क में भावों के मध्य ऊपर की ओर कुछ विशेष तपश मालूम हो, तो हमें बता देना'' इतना फरमाकर श्री आनन्द-

-कन्द प्रभुजी ने अपनी दृष्टि को उनकी भृकुटी स्थान पर जोड़ दिया। तब उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा कि भृकुटी के उपर कुछ गढ़ा और ज्योति उत्पन्न होती जा रही है। जब जलन भी विशेष प्रतीत होने लगी तो मुलखराज जी ने कहाँ ''प्रभुजी अब जलन विशेष प्रतीत होती है।'' तब श्री प्रभु जी ने तत्क्षण दृष्टि गिरा लिया और कहा-''पुत्र आज इस बालक को प्रभु जी ने तीसरा नेत्र दे दिया है।'' यह सुनकर वह भी प्रभु जी के चरणों में लिपट गये। श्री अनाथ नाथ की कृपा से उसे 24 घण्टे अटल रूप से पूर्ण स्थिति रहने लगी।

महात्मा ऋषि देवी जी के ध्यानानुभव

महात्मा ऋषि देवी जी को बाल्यकाल से ही कुछ-कुछ अनुभव होते रहते थे। कारण था कि उनका संस्कार सदगुरू देव आनन्दकन्द योग-योगेश्वर श्री प्रभु जी के द्वारा ही था। इसी से दीक्षा पूर्व ही इनको प्रभु जी के दर्शन हुए थे। सात्विक भाव, प्राणी मात्र के उपकार, साधु सेवा आदि भावनाऐं उत्कृष्टता से भरी थी। इनने एक गौ अत्याधिक सेवा से कई आर्शीवाद प्राप्त किये। दीक्षा लगभग 28 वर्ष आयु में प्राप्त की।

प्रभु जी ने इनकी अच्छी एकाग्रता से स्वर्गादि लोकों के दृश्य बार-बार कराए। वहाँ पर वह देखती थी। कि सभी देवी-देवता श्री प्रभु जी की बारम्बार वन्दना आरती कर रहे हैं। ध्यानावस्था में ही चारों वेद, भागवत, महाभारत इत्यादि शास्त्रों का ज्ञान-श्री प्रभूजी ने कृपा कर कराया था। समाधी अवस्था में स्वयं को भगवान शिव में स्वयं को लय होता देखा करती थी। एक बार प्रभु कृपा से अनवरत सात-सात दिन तक समाधिस्थ रहकर दैविक भोग प्राप्त करती रही। ध्यान में श्री प्रभु आज्ञा प्राप्त कर इन्होनें ''सती आश्रम'' की स्थापना की। आज भी सती आश्रम का वातावरण सात्विक एवं शान्त है। इनकी अनेक शिष्य-शिष्याऐं है। अब आश्रम को इनकी एक शिष्या स्वर्णलता जी देख रही हैं।

ऋषि देवी जी को कुण्डलिनी योग दीक्षा

आनन्दकन्द कृपा निकेतन श्री प्रभु जी के नैपाल से भू-मण्डल पधारने पर उनकी आलौकिक शक्ति एवं योग के प्रताप से सारे अमृतसर में पर श्री चरणों की महिमा का विस्तार धर्म पर था। महात्मा ऋषि देवी जी का जन्म अमृतसर में हुआ था। तत्कालीन प्रथमानुसार इनका पाणिग्रहण संस्कार बाल्यवस्था में ही हो गया था किन्तु प्रारब्धवश थोड़े दिनों पश्चात् इनके पति का देहावसान हो गया बाल्यकाल से ही ठाकुर सेवा सन्त सेवा, गौ सेवा आदि इनका दिन-चर्या बन गया। इन्होनें कर्म परम्परा से प्रभुजी की महिमा को सुना। अतः छोटी उम्र में ही माता पिता की आज्ञा से लोक मर्यादाओं की दीवारे तोड़कर श्री प्रभुजी के चरणों विन्दों मे पहुँच गई। श्री कृपा सिन्धु ने इनकी विनीत प्रार्थना सुनकर इन्हे कुण्डलिनी योग दीक्षा दी।

श्री प्रभु जी के योग शक्ति पात से सदाशिव भगवान के अर्धनारीश्वर रूप के दर्शन पाकर उसी में लीन रहने लगी। अर्थात स्वयं को ऐसा देखने लगी की आधा भाग भगवान शिव का है और आधा भाग पार्वती का है।

हर समय ऋद्धियाँ और सिद्धियाँ उनका साथ देने लगी। इनकी स्थिति शक्तिसम्पन्ना इतनी ऊँची बढ़ गई कि श्री प्रभु जीने इनको योग प्रचार का अधिकार दे दिया इनके सत्संग में कितनी देवी-देवता आधि, व्याधि से पीड़ित इन आशीवाद से दुखों से मुक्त कृत हो गई ने इनको महात्मा कहकर बुलाते थे। कारण कि ये शान्त रहती थी। क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष से रहित थी। श्री प्रभु जी ने इन्हें नारीयों को दीक्षा देने का अधिकार दे दिया था। ई० सन् 1970 में इन्होने गौ लोक की यात्रा कर अपना भौतिक शरीर छोड़ दिया।

"ॐ श्री रामलाल प्रभवे नमः"

भक्ति से भगवत प्राप्ति

कृष्ण कुमार पाण्डेय, गोरखपुर

परमात्मा जीवों के प्रति सदैव कृपालु है। यह कोई साधक ही समझता है। लेकिन प्रश्न यह है, कि क्या संसार के अन्य प्राणी नही समझते हैं! इसका सीधा सरल उत्तर संसार का प्रत्येक प्राणी उसकी कृपा को समझता है। लेकिन कर्म-संस्कार वश वह कितने समय तक अपने अन्तःकरण में अनुभूत करता है। क्योंकि दुर्जन व्यक्ति भी अपनी सफलता हेतु ईश्वर का ही हर तरह से आश्रय ग्रहण करता है सफलता मिलने पर वह भूल जाता है। वह यह कहता कि कितनी समझदारी से मैने कार्य किया। किन्तु एक साधक हर समय परमात्मा के कृपा को ही सफलता असफलता दोनों में प्रसन्न रहता है। परमात्मा की दृष्टि में तो कोई दुर्जन है ही नहीं। यह हम लोगों की शायद सही दृष्टि नही भी हो सकती है। गुरुदेव के संरक्षण और समीप रहने वाला यही बड़ी आसानी से समझ लेता है कि अमुक अपने कर्म संस्कारों के कारण दुर्गति को भोग रहा है। उसमें साधक की बहुत भेद दृष्टि नही रहती है। वह गुरुदेव की कृपा से परमात्मा प्रदत्त प्रकृति जगत के अच्छे बुरे रहस्यों को अपने बुद्धिगत दृष्टिकोण से जान लेता है। इसीलिए बिना किसी दुराव के समभाव के साथ अपने को समायोजित कर लेता है। लेकिन यह भी एक सीमा तक ही संभव हो पाता है। कबीर दास बे कहा है-

भक्ति बिना नहि निस्तर लाख करे जो कोय।
शब्द सनेही होय रहे, घर को पहुँचे सोय।।

अर्थात लाख प्रयास करने पर भी कोई भक्ति के बिना मुक्ति नहीं पा सकता है। लेकिन जो गुरु के उपदेशों का आदर पूर्वक अपने अंमल में लाता, तात्पर्य गुरुदेव के वचनों का जो प्रेमी है। वह सत्संग द्वारा निश्चित लक्ष्य की प्राप्त कर लेता है। कबीर और भी कहते है-

भक्ति नु सीढ़ी मुक्ति की, चढैभक्त हरषाय।
और न कोई चढ़ि सकै, निज मन समझो आय।

अर्थात् व्यक्ति मुक्ति की सीढ़ी (अवलम्ब) है। भक्त जन इस पर प्रसन्नता से चढ़ते यानि भक्ति में मन लगाते है। और कोई भी नही चढ़ सकता है। ऐसा मात्र भक्त ही अपने मन में समझ लिया है।

"पद्म पुराण में पितृभक्ति में अनुराग रखने ब्राह्मण सोम शर्मा की कथा साधकों प्रेरित को करने वाली है। एक बार सोम शर्मा के पिता शिव शर्मा अपने पुत्र से बोले- बेटा तुम सदैव हम सब (माता-पिता)

की भक्ति में लगे रहते हो। इसलिए मैं तुम्हें यह अमृत कलश दे रहा हूँ तुम इसकी सदैव रक्षा करना। मैं पत्नी के साथ तीर्थयात्रा पर जा रहा हूँ। सोम शर्मा ने कहा- पिता जी जैसी आपकी आज्ञा। सोम शर्मा ने घड़े को सुरक्षित रख दिया। पिता वर्षो तपस्या में लगे रहे। पुत्र दिन रात आलस्य रहित होकर कलश की रक्षा करते और अपने दैनिक कार्य में लगे रहते थे। पूरे दस वर्षो बाद पिता पत्नी के साथ वापस आये। पुत्र की परीक्षा लेने हेतु सपत्नीक माया का प्रयोग कर कुष्ट रोग से युक्त अपने शरीर को बना माता-पिता दोनों कुष्ट के कारण मांस पिंड की तरह दिखाई देने लगे पुत्र सोमशर्मा माता-पिता के पास आये। उन्हें कुष्ट रोग से पीड़ित देखकर भक्ति से दोनों का साष्टांग प्रणाम किया। पुत्र ने कहा- पिता जो आप तपस्या के पुंज् योगी फिर यह हालत कैसे हो गयी माता जी भी सदैव पतिव्रतं का पालन करने वाली सदाचारी पति परायण जिसमें ईष्या का लेश नहीं है। वह भी कुष्टरोग को किस पाप के कारण भोग रही है।

पिता शिव शर्मा बोले वत्स तुम्हें शोक नहीं करना चाहिए। क्योंकि सबको अपने कर्मों का फल अवश्य भोगना पड़ता है। मनुष्य पूर्वकृत पाप और पुण्य कर्मों के साथ जन्म लेता है। किसी पापकृत कर्म के द्वारा यह गति दोनों की हो गयी है। बेटा अब तुम हम लोगों के प्रिय हो। हम दोनों घाव की पीड़ा से परेशान है। इन घावों को धोकर साफ कर दो। जिससे हमारा कष्ट चला जाय पुत्र सोम शर्मा ने कहा-पिता जी यह तो हमारा धर्म है। मैं अभी आप दोनों के घावों को धोकर साफ कर देता हूं। पुत्र पिता के दुःख से अत्यन्त दुःखित रहते। उनके कष्ट को देखकर उन्हें बहुत दुःख होता था। माता पिता की सेवा बड़े प्रसन्नता को साथ करते उनके मल-मूत्र को फेंकते। सेवा में सदैव तत्पर रहते थे। विप्रवर सोमशमी बडे धर्मात्मा, यशस्वी और सत्पुरुषों में अग्रणी थे। वह माता पिता को कन्धे पर बैठाकर उनकी आज्ञा से तीर्थयात्रा भी करवाते रहते थे। माता पिता की हर प्रकार से सेवा करते थे। सेवाभक्ति में कहीं भी आलस्य नहीं करते थे। सुन्दर भोजन कराते थे। पुत्र की सेवा से माता पिता सदैव प्रसन्न रहते थे। शिवशर्मा पुत्र की पितृभक्ति की परीक्षा कठोरता से लेते थे। वे सदैव पुत्र को डाटते। यहाँ तक की कभी डंडे से पिटाई भी कर देते लेकिन सोमशर्मा की पितृ भक्ति में कहीं भी किसी भी प्रकार खोट नही दिखाई पड़ता था। शिव शर्मा ने पुत्र के तप की पूरी परीक्षा ली। परन्तु धर्मात्मा पुत्र के तप एवं कार्य में किसी प्रकार का आलस्य, प्रमाद तथा ईष्या का लवलेश भी नहीं दिखा। मारने पर भी मीठी वाणी से माता-पिता को पुकारते थे। काफी दिन व्यतीत हो गया। जब पिता ने देखा कि पुत्र तपस्या और भक्ति से किसी भी प्रकार विचलित नहीं हो रहा है। इसलिए भगवान की कृपा से इसके इस कष्ट को दूर कर देना चाहिए। आवश्यक परीक्षा पुत्र की अब पूर्ण हो गयी वह निष्कलंक है। किन्तु पिता ने तपस्या की अंतिम परीक्षा हेतु घड़े में रखे अमृत को अपनी योग शक्ति से गायब कर दिया।

एक दिन पुत्र से बोले- बेटा घड़े में रखे अमृत को ले आओ। पुत्र सहर्ष तैयार हो गया। लेकिन आश्चर्य की घड़े से अमृत गायब। यह सोचकर पुत्र परेशान हो गया। उसने वही भगवान के सम्मुख प्रतिज्ञा करके बैठ गया। उसने भगवान से निवेदन किया कि-यदि मैं तन, मन से श्रद्धा पूर्वक माता-पिता की तथा परमात्मा आप की सेवा की हैं। तो यह कलश पहले के जैसा ही अमृत से परिपूर्ण हो जाय तपस्या से उठकर देखा तो कलश अमृत से पूर्ण मिला। उसे बड़ी प्रसन्नता हुई। वह घड़े को लेकर माता-पिता के पास आया और बोला- पिता जी यह अमृत कलश लिजिए। इसे पीकर आप दोनों स्वस्थ हो जाय। पुत्र की वाणी सुनकर शिवशर्मा को बड़ा हर्ष हुआ। वे बोले- बेटा आज तुम्हारी तपस्या, इन्द्रिय संयम, शौच, गुरु शुश्रुवा तथा भक्ति भाव से विशेष सन्तुष्ट हूँ अब इसे पीकर इस विकृत रूप को स्वतः त्याग करता हूँ। देखते ही देखते माता-पिता अपने पूर्व रूप में सुन्दर और स्वस्थ हो गये। सोमशर्मा ने माता-पिता के चरणों में मस्तक झुका था। पुत्र के सम्मुख ही धर्मात्मा ब्राह्मण शिवराम भगवान विष्णु के धाम सोमशपथी अपने धर्मयुक्त कर्मों में लग गये।

साधक साथियों इस कथा मे भक्तियोग से परिपूर्ण है। गीता के श्लोक को देखे-

यस्मान्नोद्विजते लोको लोकान्नोद्विजते च यः।
हर्षामर्षभयोद्वेगैर्मुक्तो यः स च मे प्रियः॥ (112/15)

अर्थात् जो स्वयं भी किसी जॉब से उद्वेग को नहीं प्राप्त होता जिससे कोई जीव उद्वेग को प्राप्त नही होता, तथा जो हर्ष, अमर्ष और उद्वेग से रहित है। वह भक्त मुझको प्रिय है। सोम शर्मा ही भक्तों में थे। कबीर ने भी कहा है कि-

आरत गुरुभक्ति करू सबकारज सिद्ध होय।
करम जाल भव जाल में भक्त फसे नहीं कोय॥
भक्ति बु सीढ़ी मुक्ति की चढ़े भक्त हरषाय।
और न कोई चाँद सके निज मन समझो आय॥

निष्कर्ष रूप से यह सिद्ध होता है कि गुरु की भक्ति करके साधक, कर्म जाल और भव जाल में नहीं फंस सकता है। मनोमुखी हुए सीडी पर नहीं चढ़ सकता है। इसलिए हम पृथकों को यह सीख - कि गुरु का चिंतन मनन और दिये गये उपदेशों का पालन करके कल्याण का भागी बनना चाहिए।

...

श्री रामलाल प्रभवे नमः

भरोसा

✲✲ श्री अन्तूराम यादव यादव (प्रयागराज) ✲✲

प्रातः स्मरणीय, सर्व समर्थ, अन्तर्यामी योग योगेश्वर परम गुरु महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज एवं हमारे आप के प्राण-धन सद्गुरु देव भगवान के कमलवत् चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम। आप सभी भाई-बहनों को सादर जयगुरुदेव। योगेश्वर द्वय की असीम करुणा कृपा से अत्र कुशलम् तथास्तु। मेरे भाई-बहन! जैसा कि मैं प्रायः निवेदन करता रहता हूँ कि मैं तो योग की एक छोटी कक्षा का विद्यार्थी हूँ, अल्पज्ञ हूँ। मेरा अपना कुछ नहीं है। मैंने ग्रन्थों में जो कुछ पढ़ा है और सन्तों से जो कुछ भी सुना है उसी के आधार पर अपना एक छोटा सा विचार आप लोगों से साझा करने का प्रयास कर रहा हूँ। विचार का केन्द्रीय भाव यही है कि सद्गुरु भगवान के श्री चरणों में हमारा अनुराग, श्रद्धा एवं समर्पण भाव निरन्तर बढ़ता रहे। साधना में भाव का ही तो महत्व है। भजन के माध्यम से प्रायः सुनने को मिलता है कि

"भाव के भूखे हैं भगवान, भाव के भूखे हैं भगवान ।
भाव नहीं जो कुछ नहीं है, लाख करो गुणगान।।
भाव के भूखे है भगवान.....।।"

विषयान्तर न हो जाय, अतः आइए चले अपने मूल विषय की ओर-

जगत जननी माता भवानी पार्वती "श्रद्धा" की प्रतिमूर्ति मानी जाती है और यदि गुरु देवाधिदेव महादेव भगवान शंकर "विश्वास" की प्रतिमूर्ति माने जाते है। श्रद्धा स्त्री वाचक और विश्वास पुरुष वाचक शब्द है। इस स्त्री और पुरुष के संयोग से एक विलक्षण और अद्भूत पुत्र का जन्म होता है जिसका नाम है- "भरोसा"। श्रद्धा विश्वास एवं पूर्ण सर्म्पण भाव से अगर कोई व्यक्ति ईश्वर अथवा अपने सद्गुरुदेव पर भरोसा करके अपना कार्य आरम्भ करता है तो उसे कल्पनातीत फल की प्राप्ति होती है। जब कोई व्यक्ति भयंकर बीमारी से पीड़ित होता है अथवा किसी संकट में होता है तो बड़े, बुजुर्ग यही कहते है कि-"घबराइए नहीं", मालिक पर भरोसा रखिए सब ठीक हो जाएगा।

भरोसा वह ताकत है, भरोसा वह ऊर्जा है भरोसा वह सम्बल है जो अँधेरे में प्रकाश की किरण बिखेरता और इंसान को कठिन से भी कठिन परिस्थितयों से उबारने में संकट-मोचन का काम करता है। भरोसा एक ऐसा आत्म-बल है जो व्यक्ति को निर्भय बनाकर उसे धैर्यपूर्वक अपने कर्तव्य का निर्वहन करने में सहायक होता है। एक गुरुभक्त के हृदय में सदैव यही भाव रहता है कि "मुझे अपने गुरुदेव पर पूरा भरोसा है। उनका वरद हस्त सदैव मेरे सिर पर है। मैं सन्मार्ग पर रहते हुए

अपना काम करता रहूँ, कोई मेरा बाल-बाँका नहीं कर सकता।'' तभी तो गोस्वामी तुलसीदास ने कहा है कि-

"तुलसी राम भरोसे, निश्चिन्त होकर सोय।
अनहोनी होनी नहीं, होनी होय सो होय"

कोई व्यक्ति अगर पूर्ण समर्पण भाव से अपने इष्ट पर भरोसा करता है तो उसका कभी अनिष्ट हो ही नहीं सकता। भरोसा इंसान की जिन्दगी की सबसे बहुमूल्य धरोधर है।

भरोसा से ओत-प्रोत एक सच्ची घटना का मैं संक्षेप में उल्लेख करना चाहता हूँ। हो सकता है, इस घटना की पुनरावृत्ति हो रही हो, इसके लिए क्षमा-प्रार्थी हूँ। जैसा कि हम सभी जानते हैं कि रामानन्द सागर द्वारा रचित रामायण सीरियल में फिल्म अभिनेता अरूण गोविल ने श्रीराम की आदर्श भूमिका निभाया था। बहुत से भावुक लोग उन्हें साक्षात् भगवान श्रीराम समझ कर उनकी आरती पूजा किया करते थे। दूर-दर्शन के एक सम्वाददाता के साथ साक्षात्कार के समय श्री अरूण गोविल जी ने स्वंय बताया कि-

सूटिंग पर जाने से पहले मैं अपने कमरे से बाहर हाफ पैंट और टी-शर्ट पहन कर बैठा था। मैंने देखा कि एक महिला अपनी गोद में एक बालक को लेकर रोती बिलखती, लोगों से मेरे घर का पता पूछते हुए मेरी तरफ आ रही है। मेरे पास आकर उसने, अपने बच्चे को जमीन पर मेरे कदमों के पास रख कर रोते-बिलखते हुए कहा- मेरा बेटा बहुत बीमार है। कई रोज से बेहोश पड़ा है। डाक्टरों ने जबाब दे दिया है कि इसे घर ले जाओ अब यह नहीं बचेगा। वह दुखियारी महिला भाव-विह्वल होकर बोली-आप तो भगवान हैं। मुझे आप पर पूरा भरोसा है, आप ही मेरे बच्चे को ठीक कर सकते हैं। केवल आप में बच्चे के सिर पर अपना हाथ रख देंगे तो मेरा बच्चा अवश्य ठीक हो जायेगा। मैंने कहा-माताजी ! मैं इंसान हूँ, भगवान नहीं हूँ। आप अपने बच्चे को किसी दूसरे अच्छे डॉक्टर के पास ले जाइए। वह,दुख की मारी माँ ने कहा-आप मुझे ठुकराइए नहीं मैं बड़े भरोसे के साथ आप के पास आई हूँ। अब आप को छोड़कर मैं कहीं नहीं जा सकती। आप के अलावा इस संसार में मेरे बच्चे को कोई ठीक नहीं कर सकता। माँ उनकी एक भी बात सुनने को तैयार नहीं, अपनी जिद पद अड़ी रही।

अरूण जी ने कहा- मैं बड़े धर्म-संकट में पड़ गया। मैं कुछ सोचा नहीं पा रहा था कि मैं करूँ तो क्या करूँ। फिर मैं मन ही मन ईश्वर को याद करते हुए प्रार्थना करने लगा-हे ईश्वर! इस माँ में बड़ी श्रद्धा के साथ मुझ पर भरोसा किया है? इसका भरोसा टूटने न पाये। इसके बाद मैंने अपना दाहिना हाथ उस बालक के माथे पर रखा और कहा- माँ ! अब अपने बच्चे को घर ले जाइए, कुछ समय में यह ठीक हो जायेगा। माँ प्रसन्नता पूर्वक पूर्ण आश्वस्थ होकर अपने बेटे को घर ले आई। भाई और बहनों उस भरोसे

का चमत्कार देखिए, बगैर किसी औषधि के धीरे-धीरे वह बालक स्वस्थ होने लगा और एक सप्ताह बाद पूर्ण रूप से स्वस्थ हो गया। अरूण जी ने सम्वादाता से बताया कि-सूटिंग के दरम्यान एक हफ्ते बाद गार्ड ने आकर मुझसे कहा कि आप को एक माताजी आप को बुला रही है। मै बाहर आया तो देखा कि वही माँ सामने खड़ी हैं और साथ में उनका बेटा भी खड़ा है। वे दौड़कर मेरे चरणों में गिर पड़ी और बोली- हे राम! मैंने कहा था न आप भगवान हैं, आप ही मेरे बेटे को ठीक कर सकते हैं। देखिए मेरा बेटा अब पूर्ण रूप से स्वरूप हो गया है और आप के समक्ष खड़ा है। अरूण ने कहा- यह दृश्य देख सुनकर मैं अवाक् गया। मेरी आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे मन ही मन मैंने ईश्वर को धन्यवाद दिया कि हे ईश्वर ! आप की यह कैसी अद्भुत लीला है आप ने इस दुखियारी माँ के भरोसे की लाज रख ली। यह थी भरोसे की ताकत और भरोसे का विलक्षण परिणाम। ईश्वर पर पूर्ण भरोसा कर से बड़े-बड़े डॉक्टरों की भविष्यवाणी झूठी साबित करते हुए भरोसे ने अद्भुत चमत्कार दिखाया।

ऐसा ही कुछ माता शबरी के साथ भी घटित हुआ। शबरी को अपने गुरू मतंग ऋषि की उस वाणी पर पूर्ण भरोसा था। एक दिन भगवान श्रीराम इस कुटिया में आये और तुम्हारा कल्याण करके तुम्हें कृतार्थ करेंगे साठ वर्षों तक गुरू की वाणी पर अटूट श्रद्धा एवं विश्वास के साथ प्रतीक्षा करने के बाद ७८ की उम्र में माँ शबरी का भरोसा फलित हुआ। भगवान श्रीराम अपने वनवास काल में स्वंय माता शबरी की कुटिया में पधार कर उनका कल्याण किया। इस प्रकार के अनेक दृष्टातों से हमारे शास्त्र एवं ग्रंथ भरे पडे हैं। उन सबका उल्लेख करना सम्भव नहीं है।

मेरे भाई-बहन ! हम सभी गुरू भक्तों को इसी प्रकार पूर्ण समर्पण भाव से अपने गुरूदेव भगवान के वचनों पर भरोसा करके उनकी आज्ञा का पालन करते रहना चाहिए। हमें उन पर ऐसा भरोसा रखना चाहिए कि जब उन्होंने हमारा हाथ पकड़ा हैं तो एक दिन वे हमें हमारी अन्तिम मंजिल "कल्याण" तक अवश्य पहुँचायेंगे। कल्याण का तात्पर्य है-दुख से आत्यंतिक निवृत्ति। दुख से आत्यंतिक-निवृत्ति का तात्पर्य है- पुनः शरीर धारण न करना अर्थात् मोक्ष। भले ही यह मंजिल हमें एक दिन में न मिले लेकिन एक दिन अवश्य मिलेगी ऐसा हमें अपने गुरूदेव भगवान पर भरोसा रखना चाहिए।

एक बार एक सज्जन से मेरा एक छोटा सा वार्तालाप हुआ। उस वार्ता का एक अंश प्रस्तुत करते हुए मैं अपनी लेखनी को विराम देता हूँ।

एक सज्जन ने मुझसे प्रश्न किया कि आप किस देवता की पूजा करते हैं? बड़ी विनम्रता के साथ मैंने जबाब दिया।

"गुरु मेरे मन्दिर, गुरु मेरी पूजा ।
गुरु देवता है कि गुर देवता हैं ।।"

उन्होंने फिर मुझसे प्रश्न किया- आप अपने गुरु को देवता और भगवान मानते हैं। आप को अपने गुरु पर इतना भरोसा हैं, कैसे हैं आप के गुरु? आखिर होंगे तो एक इंसान ही। उनके इस प्रश्न के उत्तर में मैंने कहा भैया!

"कोई मेरी आँखो से देखे तो समझे।"
कि गुरु मेरे क्या हैं कि गुरु मेरे क्या हैं।।

सादर जय गुरूदेव।
गुरूदेव भगवान का एक अकिंचन बालक
अन्तूराम यादव
प्रयागराज
फोन- 9936678368

श्री रामलाल प्रभवे नमः

गुरूदेव का 115 वाँ प्राकट्योत्सव सम्पन्न !!

आनन्दकन्द सद्गुरूदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का 115 वाँ प्राकट्योत्सव श्री सिद्ध गुफा संवाई धाम में 11 और 12 अक्टूबर को बड़े ही धूम-धाम से मनाया गया। यहाँ की अन्य शाखाओं से भी इसके प्रकार से उत्सव मनाने का समाचार मिला है।

इस अवसर पर आन्ध्रप्रदेश से पधारे श्रद्धेय नृसिंह योगी के सुपुत्र श्री गुरूप्रसाद जी ने सद्गुरू तत्व पर अपने विचार भक्तों के सामने रखे। उन्होंने कहा कि सदगुरू की कृपा के बिना परमात्मा की प्राप्ति संभव नही है। गुरूदेव ही अपने शिष्य को आध्यात्म का नया जीवन देते हैं जो मुक्ति का कारण बनता है। सद्गुरू की कृपा का वर्णन शब्दों में हो नहीं सकता है।

दिल्ली से पधारे श्री मनमोहन त्रिखानी ने भी अपने हृदय के उदगार प्रकट किये और गुरूदेव के अनेक संस्मरण सुनाये। जो भक्तों में मन में श्रद्धा का संचार करने वाले थे। उसी क्रम के आचार्य दासलाल जी महाराज का उदबोधन हुआ।

१२ अक्टूबर को पूजन एवं भण्डारे का आयोजन हुआ ।

अक्टूबर माह के योग प्रचार कार्यक्रम सम्पन्न

दिनांक 18 से 20 अक्टूबर तक योग प्रचार कार्यक्रम टोडरपुर वाराणसी में रहा ।। इसमें आचार्य जी ने योग के गूढ़ सिद्धान्तों को समझाया । इनके साथ में एम. के. त्रिखा भी गये थे इन्होंने भी गुरूदेव के चरित्र सुनाये व सब को आनन्द से भर दिया । 21 से 23 अक्टूबर का कार्यक्रम मिर्जापुर में था जहां के अति श्रद्धालु भक्त गण श्री दूधनाथ जी, ज्ञानचन्द्र सेठ, आशीष पंडित, मिन्टू, राघवेन्द्र सिंह, भोला पण्डित आदि सभी ने अत्यन्त परिश्रम से आयोजन को सफल बनाया ।

24 अक्टूबर से 27 अक्टूबर तक कार्यक्रम कानपुर में रहा इसमें मुख्य आयोजक श्री वीरेन्द्र सिंह प्रिंसिपल, भरत मिश्रा, तारा चन्द्र गुप्ता, रमेश गुप्ता,अशोक शुक्ला रहते हैं जिनका संचालन बहुत अच्छा रहा । शिविर में आचार्य जी ने भक्ति और योग को एक ही बताया । दौनों मोक्ष दायक मार्ग है ।

श्री आचार्य दासलाल जी महाराज

के आगामी योग प्रचार कार्यक्रम

8 से 10 नवम्बर तक नागपुर में

ऊंवावाई धर्मशाला, महावीर मन्दिर परिसर भक्तिधाम, आजाद चौक सदर नागपुर (महाराष्ट्र)

22 नवम्बर से 24 नवम्बर तक देहरादून

पता- स्वर्गपुरी आश्रम, रेंस क्रोर्स पुलिस लाइन के सामने, देहरादून

24 की सांय

सहारनपुर सत्संग इष्ट सिद्धि मन्दिर विकास भवन के सामने दिल्ली रोड, सहारनपुर

सहारनपुर योग प्रचार मण्डल द्वारा वेदपाल सैनी एवं सुधीर आदि

25 को 12 बजे

धरौण्डा हरियाणा को प्रस्थान

26 से 28 नवम्बर

श्री प्रभुलाल योगाश्रम

बी.टी. रोड-धरौण्डा P.W.D. Rest House के सामने धरौण्डा जि० करनाल (हरियाण)

3 दिसम्बर से 6 दिसम्बर दतिया

चन्दन सिंह बाबू की कोठी- बस स्टैण्ड के पास

7 दिसम्बर से 8 दिसम्बर ग्वालियर

त्रिवेदी कॉलौनी, अमलतास, धर्मवीर पेट्रोल पम्प के सामने, ग्वालियर

9 से 14 दिसम्बर

पोखपाल सिंह द्वारा

तैयवपुर सुजातगंज पो. विलराम-कासगंज (एटा)

महिर्ष दयानंद और योग

श्री देवी प्रसाद शर्मा "दिव्य"

अक्टूबर अंक का शेष भाग...

जिस समय इन सब साधनों से परमेश्वर की उपासना करके उसमें प्रवेश किया चाहें, उस समय इस रीति से करें कि - (अथ यदिद०) कण्ठ के नीचे, दोनों स्तनों के बीच में, और उदर के ऊपर जो हृदयदेश है, जिसको ब्रह्मपुर अर्थात् अवकाशरूप एक स्थान है, और उसके बीच में जो सर्वशक्तिमान् परमात्मा बाहर भीतर एक रस होकर भर रहा है वह आनन्द स्वरूप परमेश्वर उसी प्रकाशित स्थान के बीच में खोज करने से मिल जाता है। दूसरा उसके मिलने का कोई उत्तम स्थान वा मार्ग नहीं है।

और कदाचित् कोई पूछे कि (तं चेद् ० अर्थात् उस हृदयाकाश में क्या रखता है जिसकी खोजना की जाय।

तो उसका उत्तर यह है कि (स ब्रूयाद्या०) हृदय देश में जितना आकाश है, वह सब अन्तर्यामी परमेश्वर ही से भर रहा है, और उसी हृदयाकाश के बीच में सूर्य्य आदि प्रकाश, तथा पृथिवीलोक, अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, बिजुली और सब नक्षत्र लोक भी ठहर रहें हैं। जितने दीखने वाले और नहीं दीखने वाले पदार्थ हैं, वे सब उसी की सत्ता के बीच में स्थिर हो रहे हैं।

।(तं चेद् ब्रूय०) इसमें कोई ऐसी शङ्का करें कि जिस ब्रह्मपुर हृदयाकाश में सब भूत और काम स्थिर होते हैं, उस हृदय देश के वृद्धावस्था के उपरान्त नाश हो जाने पर उसके बीच में क्या बाकी रह जाता है जिसको तुम खोतने को कहते हो।

तो इसका उत्तर यह है (सा ब्रू यात०) सुनो भाई ! उस ब्रह्मपुर में जो परिपूर्ण परमेश्वर है, उसको न तो कभी वृद्धावस्था होती है, और न कभी नाश होता है। उसी का नाम सत्य ब्रह्मपुर है, कि जिसमें सब काम परिपूर्ण हो जाते हैं। वह (अपहतपाप्मा) अर्थात् सब पापों से रहित, शुद्धस्वभाव, (विजर:) जरा अवस्थारहित, विशोक: शोक- रहित, (विजिघत्सोऽपि०) जो खाने-पीने की इच्छा कभी नहीं करता, (सत्यकाम:) जिसके सब काम सत्य हैं, (संत्यसंकल्प:) जिसके सब संकल्प भी सत्य हैं। उसी आकाश में प्रलय। होने के समय सब प्रजा प्रवेश कर जाती है, और उसी के रचने से उत्पत्ति के समय फिर प्रकाशित होती है। इस पूर्वोक्त उपासना स उपासक लोग जिस जिस काम की, जिस जिस क्षेत्र भाग अर्थात् अवकाश की इच्छा करते हैं, उन सबको वे यथावत् प्राप्त होते हैं।

उपासना के भेद--

योग-दर्शन के सूत्रों की उपर्युक्त व्याख्या अपने विचारों के अनुसार करते हुए महर्षि ने अन्त मे उपासना के दो भेद बताये हैं।
१ सगुण, और २ निर्गुण

शुक्र अर्थात् जगत का रचने वाला वीर्य-वान तथा शुद्ध कवि, मनीषी, परिभु और स्वयम् इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण है, और अकाय, अवण अस्नाविर इत्यादि गुणों के निषेध होने से वह निर्गुण कहाता तथा एको देवः एक देव इत्यादि गुणों के सहित होने से परमेश्वर सगुण और निर्गुणादव इसके कहने से निर्गुण समझा जाता है तथा ईश्वर के सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान, शुद्ध, सनातन, न्यायकारी, दयालु, सब में व्यापक, सबका और सबका स्वामी इत्यादि सत्य गुणों की ज्ञान पूर्वक उपासना करने को सगुणोपासना कहते हैं। और वह परमेश्वर कभी जन्म नहीं लेता निराकार अर्थात् आकार वाला कभी नहीं होता, अकाय अर्थात् शरीर कभी नहीं धारता अवण अर्थात् जिसमें छिद्र कभी नहीं होता जो शब्द, रूप, रस और गन्ध वाला कभी नहीं होता जिसमें दो-तीन आदि संख्या की गणना नहीं बन सकती, जो लम्बा चौड़ा हल्का भारी कभी नहीं होता, इत्यादि गुणों के निवारण पूर्वक उसका स्मरण करने को निर्गुण उपासना कहते हैं।''

इस प्रकार स्वामी दयानन्दजी ने योग की उपासना और योग के अनुसार जीवन-यापन से मध्य की मुक्ति सम्भव है तथा योग मार्ग का अवलंबन ही उसका चरम लक्ष्य होना चाहिए इसकी पुष्टि पद पद पर की है। हम प्रारम्भ में लिख चुके हैं कि स्वयं वे एक बहुत बड़े योगी थे तथा उनकी समूची जीवन चर्या योगधर्म से ओत-प्रोत थी।

जीवन की पूर्णिमा

✲✲ डॉ० श्री मुन्शीराम शर्मा, पी-एच डी०, कानपुर ✲✲

अमावस्या और प्रतिपदा के दिन चन्द्र के दर्शन पृथ्वी के प्राणियों को नहीं होते। द्वितीया के दिन उसकी अत्यन्त क्षीण कला दिखाई देती है। चन्द्रका स्वल्पांश प्रकाशमय, परन्तु अधिकांश अन्धकाराच्छादित रहता है। द्वितीया के पश्चात् चतुर्दशी तक शनैः-शनैः प्रकाश का भाग बढ़ता जाता है और अन्धकार का भाग घटता जाता है। पूर्णिमा के दिन चन्द्र का सम्पूर्ण बिम्ब प्रकाश से ओत-प्रोत हो उठता है और अन्धकार का लवलेश भी उसके अन्दर नहीं रहता। उस दिन चन्द्रमा को देख कर समुद्र का हृदय बल्लियों उछलने लगता है, चन्द्रकान्त मणि द्रवित होने लगती है, औषधियों के अङ्ग-अङ्ग रससिक्त हो जाते हैं और निखिल प्राणी जगत् अपार आह्लाद का अनुभव करता है।

पूर्णिमा का नाम पूर्णिमा चन्द्र की समस्त कलाओं के परिपूर्ण विकास के कारण ही पड़ा है। इस दिन चन्द्रमा अन्धकार से एकान्त वियुक्त और प्रकाश से एकान्त संयुक्त होता है। इस दिन इसकी दुग्धधवल, आनन्दमयी तथा अमृत स्पन्दिनी छटा देखते ही बनती है। क्या मेरे जीवन में भी कभी ऐसी ही प्रकाश-मयी पूर्णिमा दिखाई देगी ? मेरे जीवन की पूर्णिमा कब होगी ? मेरा जीवन अन्धकार से शून्य तथा प्रकाश से परिपूर्ण किस दिन होगा ?

जीवन में अन्धकार का भाग अविवेक और अज्ञान की अवस्था है। जैसे-जैसे ज्ञानार्जन द्वारा अविवेक का अंश कम होता जाता है, वैसे ही वैसे जीवन प्रकाशित होता जाता है। पर, ज्ञानार्जन खेल नहीं है। इसलिए घोर तपश्चर्या करनी पड़ती है।

ज्ञानार्जन कुछ सूचनाओं को एकत्रित करने का नाम नहीं है। सूचनाओं का भार-वहन करने वाले गर्दभ रूपी मानव तो यहाँ अनेक दिखाई पड़ जायेंगे, पर ज्ञानी शब्द को सार्थक सिद्ध करने वाले मानव विरले ही मिलेंगे। सुकरात यूनान के अन्दर अपने समय का अप्रितम विद्वान था, पर जब अन्य मानव उसे विद्वान, ज्ञानी या ऋषि कहकर पुकारते थे, तो उसे आश्चर्य होता था। उसे अपनी ज्ञान-सीमा का पता था और अपने अज्ञान का भी ज्ञान था। एक दिन वह ज्ञान की परख करने के लिए यूनान के तथा-कथित ज्ञानियों, अपने

विषय के पारंगत अध्यापकों के पास पहुँचा। उनसे वार्तालाप करके वह इस परिणाम पर पहुँचा कि ये अध्यापक जो अपने-अपने विषय के विद्वान कहे जाते हैं, कितने अज्ञान में हैं। ये ज्ञानी बनने का ढोंग करते हैं, पर, हैं नितान्त अज्ञानी। ये जिस बात को नहीं जानते, उसके जानने का भी दम भरते हैं। इनमें और मुझमें बस एक ही अन्तर है ये अपने अज्ञान को भी ज्ञान समझते हैं, पर मुझे अपने अज्ञान का ज्ञान है। ये उस बात को भी कहते हैं, जिसे नहीं जानते। मैं उतना ही कहता हूँ, जितना जान पाया हूँ और यह भी मुझे समझ है कि ज्ञान के अनेक स्तर हैं, पर ज्ञान का अधिकाँश भाग अभी जानने को पड़ा है जिसे मैं अभी तक जान नहीं पाया।

भर्तृहरि का निम्नांकित श्लोक इस विषय में अधिक प्रसिद्ध है :-

यदा किञ्चिज्ञोऽहं द्विप
इव मदान्धः समभवम् ।
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्य
वदवलिप्तं मम मनः ।।
यदा किञ्चित्-किञ्चित,
बुधजन सकाशादवगतम् ।
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर,
इव मदो मे व्यपगतः ।।

'जब मुझे कुछ भी नहीं आता था, तब मतवाले हाथी के समान मैं अपने ज्ञान के नशे में चूर रहता था और अपने को सर्वज्ञ समझता था। पर, जब मैंने ज्ञानियों का सम्पर्क किया और उस सम्पर्क से कुछ-कुछ बोध होने लगा, तब समझमें आया कि मैं कितना मूर्ख हूँ। फिर जैसे ज्वर उतर जाता है, वैसे ही ज्ञानी बनने का मेरा सारा नशा ठण्डा पड़ गया। ज्ञान के क्षेत्र में भी कई स्तर हो सकते हैं। कौन मानव किस स्तर पर है, इसका ज्ञान उसे स्वयं होना चाहिए। प्लेटो ने ज्ञान के चार प्रकारों का वर्णन किया है। पहले प्रकार का ज्ञान आभास मात्र होता है। वह ज्ञान नहीं, ज्ञान की परछाई है। वास्तविक ज्ञान उससे कोसों दूर है। 'दूसरे प्रकार का ज्ञान किसी वस्तु के सम्बन्ध में प्रत्येक मानव के अपने-अपने दृष्टिकोण पर अवलम्बित है। मैं एक वस्तु को एक विशेष दृष्टिकोण से देखता हूँ। दूसरा व्यक्ति, आवश्यक नहीं कि उसी दृष्टिकोण से देखे। किसी वस्तु का जो रंगरूप मेरे सामने आता है, दूसरे के सामने सम्भव है, उससे भिन्न रंगरूप आवे। ये दोनों प्रकार के ज्ञान भिन्न-भिन्न मानवों की भिन्न-भिन्न सम्मतियाँ कहे जा सकते हैं, इन्हें ज्ञानका रूप नहीं दिया जा सकता। तीसरे प्रकार का ज्ञान एक जातिका ज्ञान है। यहं सम्मतियों से ऊपर है और सामान्य ज्ञान कहा जा सकता है। अमुक वस्तु घड़ी है क्योंकि उसी प्रकार की अनेक घड़ियाँ मैंने देखी हैं। यह 'फाउन्टेनपेन' है क्योंकि इसी तरह के अनेक फाउन्टेनपेन

वैराग्य (प्रथम)

**** विशेष लेख-योगीराज अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ****

हमारे शास्त्रों में मन की एकाग्रता के लिए दो प्रमुख साधनों का वर्णन किया गया। उनका नाम है। १. अभ्यास और २. वैराग्य। मन को एकाग्र करने के लिए अभ्यास किये जाने वाले साधनों का बहुत बड़ा वर्णन हमारे शास्त्रों में मिलता है। उनमें श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि वेदान्त की साधनायें और यम, नियम, आसन, प्राणायाम आदि योग से सम्बन्ध रखने वाली साधनायें मन की एकाग्रता के लिए ही है। साधनाओं में किसी प्रकार का अन्तर नहीं पड़ता, चाहे हम महा वाक्यों का मनन करते हुए श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि का अभ्यास करें चाहे समाधि प्राप्ति का लक्ष्य बनाकर यम, नियम, आसन आदि के पालन में तत्पर होकर लगें। यह सब अभ्यास ही कहलाता है। अभ्यास एक इस प्रकार का साधन है, जिसको हर स्थिति का मनुष्य पालन करता हुआ अपने उच्चतम लक्ष्य को शनैः शनैः- प्राप्त कर सकता है। किन्तु उन सब में वैराग्य को मोक्ष का निमित्त माना गया है। जो मनुष्य प्राक्तन कर्म -विपाक पुण्य के प्रभाव से विषयों से वितृष्ण हो जाता है उसको किसी भी साधना की आवश्यकता नहीं पड़ती। क्योंकि इन्द्रियों के विषयों में वितृष्ण होना ही वैराग्य कहलाता है। इन्द्रियों का अपने अपने विषयों से वितराग हो जाना ही वैराग्य कहलाता है। संसार की सभी वस्तुएँ भयान्वित हैं। किन्तु एकमात्र वैराग्यवान व्यक्ति भयरहित हो करके निर्द्वन्द सोता है। श्री भतृहरि जी महाराज ने अपने वैराग्यशतक में बिल्कुल स्पष्ट शब्दों में कह दिया है कि:-

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं
वित्ते नृपालाद्भयम्।
माने दैन्य भयं बले रिपुभयं
रूपे जरांया भयम्॥
शास्त्रे वादभयं गुणे खलभयं
काये कृतान्ताद्भयम।
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि
नृणां वैराग्य मेवाऽभयम्॥

अर्थात् 'भोगे रोग भयम्' जो मनुष्य भोगों को भोगता चला जाता है वह अवश्य ही रोगी बन जाता है। भोग भोगने की इच्छा तो प्रबल रहती है। उस इच्छा को भोग करके ही मनुष्य क्षण मात्र के लिए हट सकता है पर थोड़ी देर के बाद वही वासना और भी दुगना चौगुना रूप धारण करके सामने आने लगती है। क्योंकि शास्त्रीय सिद्धान्त है:-

न जातु कामः कामानामुप भोगेन शाम्यति हविषा। कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्द्धते।

अर्थात् पैदा हुई कामनायें कभी उनके भोग से शान्त नहीं होती, प्रत्युत अग्नि में घी डालने पर जिस प्रकार अग्नि उत्तरोत्तर बढ़ती जाती है उसी प्रकार कामनाओं का उपभोग करने से कामनायें भी उत्तरोत्तर बढ़ती चली जाती है। इसलिये भोग भोगने से इन्द्रिय

लौल्य उत्तरोत्तर बढ़ता ही है इस चपलता तो तो भोग के अनभ्यास से ही ठीक कर सकता है अन्यथा वीतराग होकर के ठीक कर सकता है उपर्युक्त श्लोक में श्री भर्तृहरि जी महाराज ने 'भोगे रोग भयं'कह करके भोग का अंतिम परिणाम दिखला दिया। भोग भोगने से इन्द्रियों की चपलता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही है जितनी चपलता बढ़ेगी उतना ही मनुष्यभोग का भोक्ता बन जायेगा। जितना वह भोक्ता बनेगा उतना ही उसके शरीर से शक्ति का दिन प्रति दिन क्षय होता चला जायेगा। ज्यों-ज्यों शक्ति कम होगी त्यों-त्यों रोग बढ़ते चले जायेंगे और भोगे रोग भयं का परिणाम सामने आता चला जायेगा। यदि हम ईश्वर की परमानु-कम्पा से इन्द्रियों में वीतराग हैं तो हमारे मन में भोग की इच्छा ही नहीं बनेगी। भोगेच्छा मन में न बनने पर भोग प्रवृत्ति स्वतः ही बन्द हो जायेगी। इसलिए यह बिल्कुल सत्य और यथार्थ कहा गया है कि भोगे रोग भयं पश्चात् कुले च्युति भयं। एक व्यक्ति का कुल शीलवान है, उसके कुल में उसके पूर्वज लोग ऊँचे ऊँचे आदर्शों को लेकर पैदा होते आ रहे हैं।

उनकी संस्कृति और शिक्षा बड़ी उच्च भावों की चलती रही है। कदाचित् कोई भ्रष्टात्मा जन्म ले ले और अपने रास्ते से भ्रष्ट हो जाय तो वह कुल-कलंक कहलाता है। इसलिये 'कुले च्युति भयं' का यथार्थ प्रयोग है। तत्पश्चात् वित्ते नृपालाद्भय घर में यदि किसी प्रकार की सम्पत्ति इकट्ठी हो उसमें शासकों का भय बना रहता है। आज कल संसार में देखने में आता है जहाँ पर किसी प्रकार की बड़ी आय अथवा घर में सम्पत्ति दिखलाई देती है तो सरकार सम्पत्ति कर लगाकर धन अधिक मात्रा में ले लेती है।

मनुष्य यदि मौन रहता है तो दीनता का भय रहता है। सुन्दर रूप है तो बुढ़ापे का भय बना रहता है। शास्त्रों का ज्ञाता है तो प्रतिपक्षियों का भय बना रहता है। शरीर है तो काल का भय रहता है। सभी वस्तुँ भयान्वित हैं। केवल मात्र वही मनुष्य निर्भय है जो इन सबके राग से परे निकल गया है, विरक्त हो गया है। इसलिये यह सब भर्तहरि जी ने यथार्थ ही कहा है:-

सर्वं वस्तु भयान्वितं

भुवि नृणां वैरोग्य मेवाऽभयम्।

इन्हीं सब कारणों से वैराग्य को मोक्ष का नान्तरियत माना है। योग दर्शन में भगवान पंतजलि देव जी ने पर और अपर वैराग्य के दो विभागों में बाँट दिया है। जो मनुष्य अपनी वासनाओं पर नियंत्रण करके अपने आपको संयमित रखने की चेष्टा करता है वह वशीकार संज्ञा वैराग्य का अधिकारी है। वंशीकार संज्ञा वैराग्य का लक्षण योग दर्शन में भगवान् पंतजलि देव जी ने इस प्रकार बतलाया है:-

दृष्टानुश्रविक विषय वितृष्णस्य वशीकार संज्ञा वैराग्यम्।

अर्थात् देखे और सुने हुए विषयों पर वशीकार होना वशीकार संज्ञा वैराग्य कहलाता है। इस सूत्र पर भाष्य करते हुये भगवान व्यासदेव जी ने लिखा है:-

स्त्रियोऽन्नपानमैश्वर्य्यमिति दृष्ट विषय वि-तृष्णस्य स्वर्ग वैदेह्य प्रकृतिलयत्व प्राप्ता-वानु श्रविक विषये वितृष्णस्य दिव्यादिव्य विषय सम्प्रयोगेऽपि चितस्य विषयदोष दर्शिन:प्रसङ्ख्यानबलढ़ना भोगत्मिका हेयोपादेय शून्या वशीकार संज्ञा वैराग्यम्।।

हमारी बुद्धि का अंग बन जाता है, हमारे धारण हो जाता है। इस स्थिति को (मे-मेरे अन्दर जो धा-धारित हो गया) कहते हैं। यह धारण किया हुआ पचाया हुआ ज्ञान जब निदिध्यासन द्वारा साक्षात् की अवस्था को प्राप्त करता है, तो मेधा भी ऊपर प्रज्ञा कहलाता है। प्रज्ञा से प्रकाश की अवस्था है। किसी वस्तु का इसी अवस्था में हस्तामलकवत ज्ञान का धारण करता है। इसी अवस्था में जीव को अपने को ऋतु फैले हुए तन्तु से, प्रकृति आत्मतत्त्व उसे पृथक पृथक दिखाई पड़ने हैं। आत्म-ज्ञान के पश्चात् अंगला पडाव परमात्म-ज्ञान का ही है। अपने स्वरूप अवस्थित होकर जीव एक ओर प्रगति परित्याग करता है और दूसरी ओर परमात्मा का दर्शन करता है.

श्रद्धा का सम्बल लेकर जीव छन्दों, ऋचाओं तथा स्वर-संसार की मूलभूत ध्वनियों में प्रवेश करता है। ऋचाओं का ज्ञान उसे ब्रह्माण्ड के मूल में निहित ऋत की प्रथमजा तक पहुँचाता है। ऋतको प्रथमजा का आश्रय आत्मज्ञान करता है और आत्मज्ञान परमात्म- तत्त्व का ज्ञान कराता है। ऋत की प्रथमजा पर पहुँचते हो उसे सत् का प्रकाश दृष्टिगोचर होता है। सत् के प्रकाश से श्रेष्ठतर आत्म प्रकाश है और सबसे श्रेष्ठ परमात्म प्रकाश।

ईजानश्चित नाकक्षदग्निं नाकस्य,
पृष्ठात् दिव मुत्पतिष्यन्।
तस्मै प्रभाति नभसो ज्योतिषीमान,
स्वर्ग: पंथा सुकृते देवयान:

त्याग और तपस्या के साथ यज्ञ करता हुआ साधक जब चैतन्य की अग्नि पर आरोहण करता है, प्रमाद, राग-द्वेष के तमोगुण तथा रजोगुण पर विजय प्राप्त करता हुआ जब सत के प्रकाश में चेतनता की झलक देखता है, तभी वह नाक की पीठ पर बैठकर दिल की ओर, नाक से भी ऊपर की ओर उड़ता है। उस समय उसके समक्ष नभ में ज्योति चमकती दिखाई पड़ती है। यही देवयान है जो उस सुकृती को आनन्द की ओर ले जाता है।

नाक क्या है ? निरुक्ति द्वारा क सुख है, तो अ+क दु:ख है और जो न+अ+क है अर्थात् दु:ख रहित अवस्था है वही नाक है। संसार सुख और दु:ख दोनों का सम्मिश्रण है। जहा एक होगा वहां दूसरा भी होगा। दोनों का युग्म

है। सुख-दुःख दोनों साथ-साथ रहते हैं। नाक संसार की सुख-दुःखमयी अवस्था से कार की अवस्था द्यौ की है। देवयान-पथ का पथिक, कर्ममार्ग से ऊपर उठकर ज्ञानमार्ग का आश्रय देने वाला यात्री, इस द्यौ के प्रकाश का अनुभव करता है और आत्मानन्द ही परमा- त्मानन्द मे मग्न करने वाला है। जीवन की पूर्णिमा यही है। पवमान सोम की आनन्द-दायिनी, अमृत स्य- न्दिनी, रसमयी, प्रपंचोप- शममयी अद्व ैत अवस्था इसीका नाम है जिसमें तारे नहीं, एक चन्द्र चमकता है, विविध सूत्रों की टिम- टिमाती ज्योति नहीं, आनन्द अजस्र आलोक जगमगाता है, इन्द्रिय- देवों का वैभव- विलास नहीं एक आत्म-प्रकाश दिखाई देता है। प्रकृति में पूर्णिमा का चन्द्र चमकता है। मेरे जीवन की पूर्णिमा का यह चन्द्र कब चमकेगा ? इस प्रश्न का उत्तर हमें अपनी जीवन- का उत्तर हमें अपने जीवनचर्या से देना होगा और अवकाश प्राप्त करने पर अपने से पूछना होगा कि हम दिशा में कितना आगे बढ़ सके है।

विचार-कण

दुखियों के दुःख का अनुभव करो और उनकी सहायता करने को आगे बढ़, भगवान तुम्हें सफलता देंगे ही । मैंने अपने हृदय में इस भार को मस्तिष्क में इस विचार को रखा कर बारह वर्ष तक भ्रमण किया । मैं तथाकथित बड़े और धनवान व्यक्तियों के दरवाजें पर गया। वेदना-भरा हृदय लेकर और संसार का आधा भाग पार कर, सहायता प्राप्त करने के लिए मैं इस देश (अमेरिका) में आया । ईश्वर महान् है। जानता हूँ, वह मेरी सहायता करेगा। मैं इस भूखण्ड में शीत से भूखा से भले ही मर जाऊँ, पर हे तरूणों, मैं तुम्हारे लिए एक वसीयत छोड़े जाता हूँ, और वह है यह सहानुभूति-गरीबों, अज्ञानियों और दुःखियों की सेवा के लिए प्राणपण से चेष्टा ।

मनुष्य अल्पायु है और संसार की सब वस्तुयें वृथा तथा क्षणभंगुर हैं, पर वे ही जीवित हैं, दूसरों के लिए जीते हैं, शेष सब तो जीवित की अपेक्षा मृत ही अधिक हैं।

मैं उस धर्म और ईश्वर में विश्वास नहीं करता, जो विधवा के आसूँ पोंछने या अनाथों को रोटी देने में असमर्थ है।

SIDDHYOG

POSTAL Regd No. OAG-019/24-26

प्रेषण कार्यालयः

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक

उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र

सवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ०प्र०)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री / श्रीमती

स मुक्तिपदमर्हति

मोह एव महामृत्युर्मुमुक्षोर्वपुरादिषु ।
मोहो विनिर्जितोयेन स मुक्तिपदमर्हति ।।

शरीरादि में मोह रखना ही मुमुक्षु की बड़ी भारी मौत है। जिसने मोह को जीत लिया है वही मुक्तिपद का अधिकारी बनता है।

सुस्वामिक—योगयोगेश्वर अवधूत श्री बालयोगेन्द्र जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दामोदर शर्मा के लिए भारत प्रेस पत्थल से मुद्रित एवं श्री सिद्ध प्रशिक्षण केन्द्र, सवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित।

सम्पादक : आचार्य ब. (डॉ.) दामोदर शर्मा